मौलाना हाली और उनका काव्य

अर्थात्

शम्सुल्-उल्मा मौलाना अलताफ़-हुसेन
"हाली" पानीपती

का

जीवनचरित और उनका उर्दू काव्य

लेखक
ज्वालादत्त शर्म्मा

प्रकाशक
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

द्वितीय बार] संवत् १९८४ वि०

समर्पण

श्रीयुक्त पण्डित लक्ष्मीनारायण उपाध्याय,
बी० ए०, एल-एल०बी०,
मुरादाबाद

प्रिय मित्र,

हाली की तरह आपने भी अपने ही विद्या-प्रेम से प्रेरित होकर उच्च शिक्षा प्राप्त की है। स्वात्मावलम्ब के आप उदाहरण हैं, इस नाते तथा अन्य दृढ़ नातों से यह पुस्तक आपकी सेवा में समर्पित है।

कृपापात्र —
ज्वालादत्त शर्म्मा

भूमिका

इस समय उर्दू जगत् में तो क्या हिन्दी जगत् में भी समाचार-पत्र पढ़नेवाला और देश की एतत्कालीन अवस्था से परिचित कोई भी ऐसा मनुष्य न निकलेगा जिसने कि मौलाना हाली का नाम न सुना हो। पिछले वर्ष ही उनका परलोकवास हुआ है। हमारा बहुत दिनों से विचार था कि हाली की कुछ नैतिक कविताओं को हिन्दी में प्रकाशित करें। उर्दू-कविवचनमाला की दो पुस्तकों का जैसा स्वागत हिन्दी के प्रतिष्ठित पत्रों ने किया उससे हमें हाली पर निबन्ध लिखने में और भी उत्साह मिला। इस छोटे से निबन्ध में हमने हाली की प्रायः सभी उर्दू कविताओं का सारोद्धार दिया है। जिन कविताओं की भाषा सरल है उन्हें छोड़ कर प्रायः सब कविताओं का हमने हिन्दी में अनुवाद भी कर दिया है। आशा है कि इस पुस्तक को पढ़कर हिन्दीभाषी सज्जन हाली के काव्य से लाभ उठायँगे और यह भी जानेंगे कि उर्दू कविता का क्षेत्र इस समय कितना विस्तृत है। इसमें सन्देह नहीं कि मातृ-भाषा हिन्दी के भाण्डार की महाकवि सूर, भक्त तुलसी और कविवर केशवदास से लेकर आज तक के कवियों ने अनेक ग्रन्थ लिखकर शोभा बढ़ाई है किन्तु इस समय देश की और जाति की आवश्यकता को लक्ष्य में रखकर बढ़िया कविता करनेवाले सज्जन पूरे दस भी नहीं हैं। सूर, तुलसी और केशव की कविता की बराबरी करनेवाली कविता संसार की भाषाओं में कम है किन्तु वर्तमान काल ने अभी तक कोई पूर्ण कवि उत्पन्न नहीं किया है। मातृ-भाषा के चरणों में कवितारूप पुष्पाञ्जलि चढ़ानेवाले इस समय अनेक कवि हैं किन्तु उनमें मातृभाषा की कृपा

के पात्र विरले हैं। हमारे कहने का यह आशय नहीं कि हिन्दी कवियों का अभाव है। अब भी हिन्दी में अनेक सुकवि हैं किन्तु उ के कवि—मौलाना हाली, प्रोफ़ेसर आज़ाद, डाक्टर मुहम्मद इक़बा एम० ए०, पी-एच० डी०, खानबहादुर सय्यद अकबर हुसेन 'अकब जैसे प्रतिभाशाली कवि अभी हिन्दी के इस युग में पैदा नहीं हुए इन लोगों ने देश की वर्त्तमान अवस्था पर कविता करके देश की जाति को और सबसे बढ़कर अपनी कवित्वशक्ति को कृतार्थ किया है।

हिन्दी में खड़ी बोली के विरोध की तरह उर्दू में भी मौलाना हाली की कविता का शुरू शुरू में ख़ूब विरोध किया गया था। पुराने ढङ्ग की कविता के प्रेमियें को उसमें कुछ रस ही मालूम न ाता था! किन्तु समय ने बता दिया कि हाली की कविता कैसी रसप्लावित है या वह कविता कहलाने की पूरी अधिकारिणी है।

इसी तरह हिन्दी में भी अभी तक बहुत से आदमियें को खड़ी बोली की कविता में ढूँढ़ने पर भी रस की बूँद का पता नहीं मिलता! किन्तु समय आयेगा जब कि खड़ी बोली कविता करने का उचित माध्यम समझी जायगी और उसमें लिखी गई कविताओं को मनुष्य बड़े चाव से पढ़ेंगे।

बहुत से आदमी उर्दू भाषा से द्वेष करते हैं इसलिए कि अनेक मुसल्मान हिन्दी से चिढ़ते । दोनें की अवस्था पर दया आती है। हमें अपने मकान को पहचान लेना चाहिए। मकान को भूल जाने के भय से घर से बाहर न निकलना कदापि उचित नहीं! हमें दूसरें के गुणें का ही अनुकरण करना चाहिए, दोषें का नहीं। कोई मुसल्मान हिन्दी से द्वेष करता है तो वह स्वयं अपनी हानि करता है। हिन्दी के काव्य में जो स्वर्गीय सुधा भर रही है उससे वञ्चित रहता है किन्तु उसके इस दोष का अनुकरण करके हमें उनके साहित्य के लाभें से वञ्चित हो जाना नहीं चाहिए।

दीवाने हाली की प्राप्ति में हमें पण्डित रामचरणलाल, टीचर मैल स्कूल मुरादाबाद ने बड़ी सहायता दी है अतएव हम उनका धन्यवाद करते हैं।

किसरौल, मुरादाबाद।
कार्तिकी १९७३ वि०

ज्वालादत्त शर्म्मा

मौलाना हाली और उनका काव्य

जीवन-चरित

कवि लोग देश की बढ़िया सम्पत्ति हैं। वे अपनी मधुर सूक्तियों से जहाँ युवकों के हृदयों में शान्ति और प्रेम का सञ्चार करते हैं वहाँ समय पड़ने पर अपनी ओज और अभिमानभरी उक्तियों से उनके तरुण हृदयों को उद्वेलित भी कर देते हैं। नवरस-सिद्ध कवि देश में, समाज में, युवकों में, स्त्रियों में, बूढ़ों में, और बालकों तक में उसी तरह प्रसिद्ध और घरेलू हो जाते हैं जिस तरह देश का राजा। वे लोग अपनी ईश्वर-दत्त प्रतिभा के बल से देश में, समाज में जब जिस रस के सञ्चार की आवश्यकता समझते हैं, उसी रस का सञ्चार और विस्तार करके देश का उन्नति-साधन और अपनी कविता को धन्य करते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपनी भक्ति-रस-प्लावित किन्तु अन्य रसयुक्त विश्वविश्रुत कविता को लिखकर भक्त जनों का विशेष और साधारण जन का असाधारण उपकार किया है। संसार के सभी सहृदय मनुष्य उसे बड़े चाव से पढ़ते हैं और पारलौकिक ही नहीं ऐहिक सुखों की

भी उसके द्वारा प्राप्ति करते । मह

महाभारत लिखकर हमारे पूर्वजों के प्रातःस्मरणीय चरित्रों संग्रह और धर्म्म के सभी तत्त्वों का सङ्कलन किया है और इस तरह हिन्दुओं का ही नहीं संसार का अशेष उपकार किया है। महाकवि कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य और अभिज्ञानशाकुन्तल जैसे आदर्श नाटक लिखकर हमें अपनी पूर्व गरिमा का जैसा अनोखा किन्तु सच्चा दृश्य दिखाया है वह उक्त ग्रन्थ-रत्नों को पढ़कर अनुभव करने की ही बात है, लिखकर बताने की नहीं। ये लोग जाति के सर्वस्व हैं। इन्हीं की बदौलत हम अपने पूर्वजों के अनुकरणीय गुणों का पता पाते हैं।

आज जिस महाकवि का जीवन-चरित लिखने का विचार है उसने भी अपनी ईश्वर-दत्त प्रतिभा को अपनी जाति के उद्धार के लिए, उसकी उन्नति के लिए व्यय करके अपने काव्य को और साथ ही अपने आपको धन्य किया है। यही नहीं किन्तु उसने मातृ-भाषा के उस काव्य-प्रवाह को जो दिनों दिन नीचे की ओर जाकर लुप्त हुआ चाहता था अपने असीम और अदम्य उत्साह और प्रखर प्रतिभा के बल से ऊँचा कर आकाश तक पहुँचा दिया। जो कविता शृङ्गार-रस के वर्णन से अधमरी हो चुकी थी उसको इस महाकवि ने अपनी स्वाभाविक सूक्तियों से जीवन-दान दिया। उर्दू के इस सुकवि कवि का नाम—हाली था। आपका पूरा नाम था शम्सुल उल्मा मौलाना अलताफ़ हुसेन हाली पानीपती।

हाली का जन्म सन् १८३७ ई० में, पानीपत (करनाल) में, हुआ था। पिता की अकाल-मृत्यु के कारण उनकी शिक्षा क्रमबद्ध न हो सकी। किन्तु बाल्य-काल से ही बालक हाली विद्या के प्रेमी थे। उन्होंने यद्यपि गुरुमुख से अरबी फ़ारसी की साधारण शिक्षा ही प्राप्त की थी किन्तु अपने तीव्र विद्या-प्रेम, अदम्य अध्यवसाय और सतत चिन्तन से इन भाषाओं में विशेष विज्ञता प्राप्त कर ली। जिन लोगों ने आपकी फ़ारसी और अरबी कविता को—जिसके संग्रह को छपे अभी बहुत दिन नहीं हुए—देखा है वे जानते हैं कि इन पुरानी भाषाओं में आपकी कैसी गति थी। उनकी इच्छा न होते हुए भी उनके रक्षकों और सम्बन्धियों ने उनका विवाह केवल १७ वर्ष की उम्र में कर दिया। विवाह के बन्धन को हाली ने विद्या-वृद्धि और शिक्षा-प्राप्ति के मार्ग में बहुत बड़ा विघ्न समझा। कुशल यह थी कि आपकी सुसराल ख़ूब मालदार थी। उन्होंने अपनी स्त्री को वहाँ भेज दिया और स्वयं पानीपत से विद्याध्ययन के लिए देहली—जो अरबी और फ़ारसी की शिक्षा-प्राप्ति के लिए उस समय काशी समझी जाती थी—चले आये। वहाँ आकर उन्होंने कोई दो वर्ष तक छन्दःशास्त्र और तर्क की पुस्तकें पढ़ीं। बाद को कुछ अर्जन करने के विचार से वे कलक्टर साहब के दफ़्तर में किसी छोटे से पद पर नियुक्त हो गये। इसी समय सन् १८५७ ई० का ग़दर हो गया। कुछ ठीक न रहा। सब ओर अशान्ति फैल गई। हाली

भी नौकरी छोड़ पानीपत चले गये। उस घोर विप्लव के समय में भी आपने अपने विद्या-व्यासङ्ग को नहीं छोड़ा। पानीपत के तात्कालिक प्रसिद्ध विद्वानों से आप अरबी-भाषा के दार्शनिक ग्रन्थ पढ़ने लगे। इस तरह युवक हाली अपने प्रकृति-दत्त विद्या-प्रेम से दिन दूनी विद्योन्नति करने लगे।

विप्लव शान्त होने पर आपकी पञ्जाब-गवर्नमेन्ट-बुकडिपो में नियुक्ति हो गई। वहाँ आपको अँगरेजी के उर्दू-अनुवादों को बा मुहावरा करना पड़ता था। इस काम को उन्होंने चार वर्ष तक बड़ी योग्यता से सम्पादन किया। इसी समय उर्दू के काव्य में विशेष परिवर्तन करनेवाली एक घटना हुई। उस घटना से उर्दू-कविता का स्रोत नितान्त भिन्न दशा में बहने लगा। उस समय तक उर्दू के कवि समस्या-पूर्ति की तरह रदीफ़ और क़ाफ़िये के चक्र में पड़े हुए थे और कवि-समाजों में निर्धारित किसी "तरह" (समस्या) पर ही अपनी योग्यता ख़र्च किया करते थे। सन् १८७४ ई० में कर्नल हालराइड ने लाहौर में एक नये प्रकार की कवि-सभा स्थापित की। उसमें नये ढङ्ग से काव्य-चर्चा होती थी। उसमें समस्या की जगह किसी विषय पर कवि अपने इच्छित छन्द में भाव प्रकट किया करते थे। निस्सन्देह उसी दिन से उर्दू-काव्य में प्राकृतिक भाव-पूर्ण कविता लिखने का सूत्रपात हुआ। सौभाग्य से इस समाज को मौलाना हाली और प्रोफ़ेसर आज़ाद जैसे प्रतिभा-शाली कवि मिले। कर्नल हालराइड (शिक्षा-विभाग के अध्यक्ष)

भी बहुत ही सहृदय और काव्य के मर्म को जाननेवाले थे। वही उस समाज के संरक्षक थे। मौलाना हाली ने उस समाज में अपनी चार मसुनवियाँ पढ़ी थीं। वे चारों मसनवियाँ उर्दू-जगत् में खूब प्रसिद्ध हैं। उनके नाम ये हैं—(१) बरखारुत, (२) निशातेउमेद, (३) मुनाज़रा रहमो इंसाफ़ और (४) हुब्बे वतन। इन मसनवियों का हमने तीसरे अध्याय में सारोद्धार किया है। इनका उर्दू-जगत् में ख़ूब आदर हुआ। ये बीसियों बार छपीं और बिकीं। प्रोफ़ेसर आज़ाद ने भी प्रायः इन्हीं विषयों पर उस समाज में कविताएँ पढ़ी थीं। उनकी कविता भी उर्दू-साहित्य की अमूल्य सम्पत्ति है।

चार वर्ष बाद मौलाना हाली ऐंगलो अरेबिक स्कूल देहली में शिक्षक हो गये। कुछ दिनों के लिए लाहौर के चीफ़्स कालेज में भी वे शिक्षक-रूप से रहे थे। किन्तु वह काम आपको पसन्द न हुआ। जिस समय आप उक्त अरेबिक स्कूल में शिक्षक थे उसी समय हैदराबाद राज्य के प्रधान मन्त्री उसे देखने के लिए पधारे थे। उस समय उन्होंने अरबी, फ़ारसी और उर्दू के कवियों, सुलेखकों और विद्वानों के लिए कुछ वृत्तियाँ प्रदान की थीं। मौलाना हाली को भी ७५) मासिक की एक वृत्ति मिली। यही वृत्ति जिस समय मौलाना हाली अलीगढ़ कालेज के डेपुटेशन में सम्मिलित होकर हैदराबाद गये थे उस समय नवाब साहब ने—जो अपनी उदारता और गुण-ग्राहकता के लिए ख़ूब प्रसिद्ध हैं—बढ़ाकर एक सौ रुपये

की कर दी थी जो मौलाना हाली को अन्तिम समय तक बराबर मिलती रही। हैदराबाद के राज्य से अरबी, फ़ारसी और उर्दू के प्रधान-प्रधान सभी कवियों और लेखकों के लिए वृत्ति की व्यवस्था हुई है और हो रही है। 'कविवर दाग़ को १५००), हाली को १००), शिबली को ३००) और नवाब साहब के गुरु मिस्टर बिलग्रामी को ३०००) मासिक इन महाशयों के जीवन-कालपर्य्यन्त मिलते रहे और मिल रहे हैं। इस राज्य ने उपर्युक्त भाषाओं के साहित्य में इस तरह कवियों और लेखकों को सम्मानपूर्वक आर्थिक सहायता देकर अनेक ग्रन्थ-रत्नों की सृष्टि कराई है। हिन्दू-नरेशों में कोई भी इस तरह संस्कृत और हिन्दी के विद्वानों की सहायता नहीं करता। उनकी उदारता के अगाध समुद्र में से एक बूँद भी प्यासे विद्वानों को नहीं मिलती। मातृभाषा के दुर्भाग्य के सिवा और इसका क्या कारण बताया जाय!

जिस समय आप देहली में थे उस समय आप प्रायः महाकवि ग़ालिब की सेवा में उपस्थित हुआ करते थे। आप उन्हीं से अपना काव्य ठीक कराते थे अर्थात् उन्हें अपना काव्य-गुरु समझते थे। महाकवि ग़ालिब जैसे दार्शनिक कवि को पाकर आपकी प्रतिभा में और भी उज्ज्वलता आ गई। मिर्ज़ा ग़ालिब के हिन्दू-मुसल्मानों में अनेक शिष्य थे। उनमें प्रायः सभी अच्छे कवि थे। हिन्दुओं में मुंशी हरगोपाल तुफ़्ता फ़ारसी में सबसे अच्छा कहते थे।' किन्तु ग़ालिब के विस्तृत शिष्य-

समुदाय में हाली ने ही सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। गुरु की दार्शनिकता ने उन्हीं के अन्दर विकास पाया। हाली ने भी गुरु ग़ालिब को गुरु-दक्षिणा में बहुत बड़ी रक़म दी। वह रक़म सोने-चाँदी के टुकड़ों में नहीं, उनके लिखे ग़ालिब के जीवन-चरित "यादगारे ग़ालिब" के रूप में अदा की गई। हाली ने गुरु का जीवन-चरित बड़ी ही श्रद्धा किन्तु मार्म्मिकता से लिखा है। उसे लिखकर उन्होंने उर्दू-साहित्य-भाण्डार में एक बहुत बढ़िया जीवन-चरित की सृष्टि की है। उसे पढ़-कर मालूम होता है कि एक शिष्य अपने काव्य-गुरु का जीवन-चरित कितने बढ़िया ढङ्ग से लिख सकता है। उसके प्रत्येक अध्याय में मौलाना ने अपनी अद्भुत लेखन-शक्ति का परिचय दिया है। ग़ालिब और हाली का मणि-काञ्चन संयोग था। ग़ालिब की मृत्यु पर आपने एक शोक-कविता लिखी थी। उसके कुछ शेर सुनिए—

बुलबुले हिन्द मर गया हैहात।
जिसकी थी बात बात में इक बात॥ १॥
नुक्ता दाँ नुक्ता संज नुक्ता शनास।
पाकदिल पाकज़ात पाक सिफ़ात॥ २॥
लाख मज़मून और उसका एक ठठोल।
सौ तकल्लुफ़ और उसकी सीधी बात॥ ३॥
एक रोशन दिमाग़ था न रहा।
शहर में इक चिराग़ था न रहा॥ ४॥
नक्‌देमानी का गंजदाँ न रहा।
ख़ाने मज़मूँ का मेज़बाँ न रहा॥ ५॥

कोई वैसा नज़र नहीं आता।
वह ज़मीं और वह आस्मां न रहा ॥ ६ ॥
साथ उसके गई बहारे स.ख़ुन।
अब कुछ अन्देश-ये ख़िज़ां न रहा ॥ ७ ॥
क्या है जिसमें वह मर्दे कार न था।
इक ज़माना कि साज़गार न था ॥ ८ ॥
शाइरी का किया हक़ उसने अदा।
पर कोई उसका हक़ गुज़ार न था ॥ ९ ॥
ख़ाकसारों से ख़ाकसारी थी।
सरबुलन्दों से इंकसार न था ॥ १० ॥
बे रियाई थी ज़ुहद के बदले।
ज़ुहद उसका अगर शआर न था ॥ ११ ॥
ऐसे पैदा कहां हैं मस्तो ख़राब।
हमने माना कि होशियार न था ॥ १२ ॥
हिन्द में नाम पायगा अब कौन।
सिक्का अपना बिठायगा अब कौन ॥ १३ ॥
उसने सबको भुला दिया दिल से।
उसको दिल से भुलायगा अब कौन ॥ १४ ॥
उससे मिलने को यां हम आते थे।
जाके दिल्ली से आयगा अब कौन ॥ १५ ॥
था बिसाते स.ख़ुन में शातिर एक।
हमको चालें बतायगा अब कौन ॥ १६ ॥
शेर में ना तमाम है हाली।
ग़ज़ल उसकी बनायगा अब कौन ॥ १७ ॥
किसको जाकर सुनायें शेरो ग़ज़ल।
किससे दादे स.ख़ुनवरी पायें ॥ १८ ॥

पस्त मजमूँ है नोह-ये उस्ताद।
किस तरह आस्माँ पै पहुँचायें॥ १६॥
अब न दुनिया में आयँगे यह लोग।
कहीं ढूँढ़ें न पायँगे यह लोग॥ २०॥
उठ गया—था जो मायेदार सख़ुन।
किसको ठहरायें अब मदारे सख़ुन॥ २१॥
मज़हरेशान हुस्ने फ़ितरत था।
मानिये लफ़्ज़ आदमीयत था॥ २२॥

पाठक, देखिए शोक-कविता कैसी स्वाभाविक है और मौलाना के उद्गार कैसे चमत्कार-पूर्ण हैं। इस कविता में यह विशेषता है कि यह सरासर ग़ालिब की कविता के रङ्ग में लिखी गई है। महाकवि ग़ालिब की कविता में शब्द और अर्थ का अत्यन्त निकट सम्बन्ध रहता था। शब्द थोड़े होते थे किन्तु उनके अर्थ दूर तक पहुँचते थे। मौलाना हाली की कविता में भी गुरु के काव्य की यह विशेषता अच्छे परिमाण में मौजूद है। कहीं-कहीं धोखा हो जाता है कि यह शेर ग़ालिब का है।

मुसल्मान जाति के उद्धारक सर सय्यद अहमदख़ाँ से आपकी बहुत घनिष्ठता थी। सर सय्यद के हृदय में आपकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। सर सय्यद ने जिस समय अलीगढ़ कालेज की नींव डाली और मुसल्मान-जाति के जर्जर शरीर में नई रूह फूँकी उस समय अनेक अदूरदर्शी धर्म्मान्ध मुसल्मान उन्हें काफ़िर तक कहने और उनके स्थापित कालेज को मुसल्मानों

की धर्म्मोन्नति का घोर बाधक समझने लगे। अँगरेज़ी शिक्षा प्राप्त करने में वे अपनी धार्म्मिक हानि समझते थे। इसी लिए अनेक सरकारी विभाग मुसल्मानों से ख़ाली थे। उनमें उच्च पदों पर तो क्या साधारण पदों पर भी कोई मुसल्मान न था। साधारण पद की योग्यता का मुसल्मान भी मुश्किल से मिलता था। सर सय्यद ने अपनी जाति की इस गिरी हुई अवस्था को अनुभव किया और उनके प्रशस्त मस्तिष्क में अपनी जाति के उद्धार का शुभ विचार शुभ क्षण में उत्पन्न हुआ। उस समय उनका साथ देनेवालों की संख्या बहुत कम थी। जो जातियाँ चिरकाल से अविद्या के घोर अन्धकार में पड़ी होती हैं वे अपने उपकारक को आरम्भ में शत्रु ही समझा करती हैं। जिन रोगियों को कुपथ्य की बुरी आदत पड़ जाती है वे अच्छे वैद्य को एक आँख नहीं देख सकते। अबोध बालक चीरा देने-वाले उपकारक डाक्टर को शत्रु ही समझता है। किन्तु सुबोध वैद्य और कार्य्य-कुशल डाक्टर उनके रोने-धोने या हाय-तोबा की कब परवा करते हैं। उनका लक्ष्य उन्हें तकलीफ़ देने का नहीं होता किन्तु उनकी तकलीफ़ दूर करने का होता है। उनका हृदय रोगी के लिए सहानुभूति से भरा होता है। यही हाल जातिहितैषियों और देश-भक्तों का भी है। सर सय्यद अपने भाइयों के विरोध से कुछ भी विचलित नहीं हुए। किन्तु उनकी यह प्रबल इच्छा थी कि कोई सुकवि अपनी भाव-पूर्ण भाषा में जाति की गिरी हुई अवस्था का चित्र खींचकर

जाति के सामने रख दे जिससे जाति का प्र[illegible] [illegible]क्ति अप[illegible]
हीन दशा को ठीक तरह से समझ सके। वे समझ जायँ
कि हम कितने पानी में हैं। उसके काव्य को पढ़कर जाति
की मोह-निद्रा टूटे जाय और सचेत होकर वह कर्तव्य-पथ में
अग्रसर हो जाय। 'जिन ढूँढ़ा तिन पाइयाँ' के अनुसार उन्हें
मौलाना हाली मिल गये। मौलाना हाली में अरबी-फ़ारसी
की पूर्ण योग्यता के साथ जाति-हित की मात्रा भी अच्छे परि-
माण में क्या—सबसे बढ़कर मौजूद थी। उस समय के
विद्वानों और कवियों में जातीयता का नाम न था। वे लोग
या तो अपनी शृङ्गार-रस की कविता को लेकर मस्त थे या
धर्म्म के ऊपर फ़िदा थे। ३० रोज़े और छ: समय की नमाज़
पढ़ना ही वे सबसे बढ़कर धर्म्म समझते थे। इस ओर
उनका ध्यान भी न था कि—

तरीक़त बजुज़ ख़िदमते ख़ल्क नेस्त।

जाति की सेवा करना ही सबसे बड़ा धर्म्म है—इस बात
को वे जानते भी न थे। किन्तु मौलाना हाली के तरुण-हृदय
में जाति के लिए दर्द भरा हुआ था—प्रेम भरा हुआ था।
मौलाना हाली में वे सब बातें थीं जिन्हें सर सय्यद चाहते थे।
उनमें अरबी-फ़ारसी की विशेष योग्यता थी, अद्भुत कवित्व-
शक्ति थी और उनके हृदय में जाति का प्रेम था। सर सय्यद
को और क्या चाहिए था। उन्हें अलीगढ़ कालेज का ट्रस्टी
बनाया। वे हर कार्य में उनका परामर्श लेने लगे। मौलाना

हाली भी निःस्वार्थ-भाव और खुले दिल से जाति की काया पलट देनेवाले इस कार्य में उन्हें सहायता देने लगे। जाति के साधारण मनुष्यों को आपने सर सय्यद की महत्ता बताई, उनके मिशन की उच्चता बताई और उसके द्वारा होनेवाले उपकारों का दिग्दर्शन कराया। एक स्थल पर हाली सय्यद के मुँह से ही उनकी सफ़ाई पेश कराते हैं। देखिए उस सफ़ाई में कैसी सफ़ाई है—

मैं तुम्हें पस्ती से पहुँचाऊँगा ता औजे कमाल।
मैं तुम्हें देखूँगा जब गिरता हुआ लूँगा सँभाल॥ १॥
मैं बनाऊँगा तुम्हारे काम सब बिगड़े हुए।
मैं सुझाऊँगा ज़माने की तुम्हें सब चाल-ढाल॥ २॥
जो करेंगे आज मेरी दस्तो बाज़ू से मदद।
मैं सदा करता रहूँगा उनकी नस्लों को निहाल॥ ३॥
क़ौम का हाली हूँ और इस्लाम का यावर हूँ मैं।
चाहो दारुल कुफ़्र समझो मुझको या दारुल जलाल॥ ४॥
मैं दिखा दूँगा कि जो दुश्मन थे मेरे नाम के।
थे हक़ीक़त में वह दुश्मन क़ौम और इस्लाम के॥ ५॥

ऊपर लिखी बातें समय ने आज सोलह आना सच प्रमाणित कर दीं। सर सय्यद का कट्टर से कट्टर विरोधी भी आज उनकी जाति-हितैषणा की प्रशंसा करता है। उन्होंने अधोगति के गढ़े में पड़ी हुई मुसल्मान जाति को उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया। किन्तु आरम्भ में उनकी प्रतिकूलता अनेक कारणों से और विभिन्न विचार-बिन्दुओं से की जाती थी। उस समय सर सय्यद ने हाली से एक ऐसा

काव्य लिखने की प्रार्थना की जिसमें मुसल्मानों की गिरी हुई अवस्था का अपेक्षाकृत कड़े शब्दों में वर्णन किया जाय और समय के फेर से उनमें जो अनेक दुर्निवार्य दोष पैदा हो गये हैं उनको दूर करने का सुपरामर्श दिया जाय। सर सय्यद के आदेश को शिरोधार्य करके मौलाना हाली ने अपने सुप्रसिद्ध "मुसद्दस" की रचना की। उस मुसद्दस का परिचय चौथे अध्याय में दिया गया है। बक़ौल आनरेबुल मौलवी ग़ुलाम-उस्-सक़लैन हाली का मुसद्दस मुसल्मानों की जातीय बाइबिल है। कवि ने अपने भाव इतनी अच्छी तरह से कविता में प्रकट किये हैं कि वे पढ़नेवालों पर प्रभाव डाले बिना नहीं रहते। इस मुसद्दस का अनुवाद पश्तो और सिन्धी बोलियों में भी हो गया है।

मौलाना हाली ने अपने काव्य-संग्रह से पहले कविता पर एक लेख लिखा है। उस लेख में आपने कवि और काव्य पर बहुत ही महत्त्व-पूर्ण भाव प्रकट किये हैं। जो लोग कविता करते हैं उन्हें उस लेख को अवश्य पढ़ना चाहिए। कुकवि और सुकवि के भेदों को दिखाते हुए मौलाना हाली ने कविता के साधन और उसके उपादान जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर बहुत ही अच्छी तरह प्रकाश डाला है। आप भी कवित्व-शक्ति को ईश्वरदत्त समझते हैं। अभ्यास करने से कविता करनी नहीं आती। इस विषय को आपने ख़ूब खोलकर लिखा है। अँगरेज़ी में भी इस भाव को इस तरह कहा है और ख़ूब कहा है—

Poets are born not made.

कवि को स्वतन्त्र होना चाहिए। राजाओं और रईसों के अधीन रहनेवाले कवियों की स्वतन्त्रता छिन जाती है। फिर वे ईश्वरदत्त शक्ति का उचित उपयोग नहीं कर सकते और इसी लिए उनकी कविता निर्जीव हो जाती है। उसमें जान नहीं होती, वह केवल शब्दों का ढाँचा होती है। आपकी सम्मति में कविता जहाँ तक बने स्वाभाविक करनी चाहिए। कविता में आकाश-पाताल के निरर्थक कुलाबे नहीं मिलाने चाहिए। संस्कृत-साहित्य के महा-कानन में प्रसाद-गुण की अधिकता के कारण ही महाकवि कालिदास के काव्य की प्रशंसा है। इसी लिए उनका नाम भारतवर्ष में ही नहीं समुद्र पार योरप में भी बड़ी प्रतिष्ठा के साथ लिया जाता है। उनके स्वाभाविक अतएव सरस वर्णन के सामने बड़े-बड़े दिग्गज कवियों की प्रभा क्षीण पड़ गई है। हाली भी स्वाभाविक काव्य को ही आदर्श काव्य समझते हैं। वे कविता और पद्य को अलग-अलग चीज़ समझते हैं और उनका यह समझना है भी ठीक। किसी मनोरञ्जक या प्रभावोत्पादक लेख को हम कविता कह सकते हैं। छन्दोबद्ध पङ्क्ति को ही पद्य कहते हैं। किन्तु जितने पद्य हैं सभी कविता के अन्तर्गत हैं—यह बात नहीं। जिन पद्यों में रस नहीं या किसी तरह का चमत्कार नहीं वे कदापि कविता नहीं हैं। तुली हुई और तुकान्त पङ्क्ति को कविता नहीं कह सकते। रस के बिना वह पङ्क्ति शब्दाडम्बरमात्र है। दुःख है मातृभाषा हिन्दी का कलेवर

इसी तरह के पद्यों से दूषित किया जा रहा है। जिसे कुछ भी तुकें मिलानी आती हैं वही कवि बनने का दावा करता है और अपनी रसभाव-विहीन थोथी कविता को हिन्दी की किसी सर्वोत्तम मासिक पत्रिका में छपाने दौड़ता है। सम्पादक महाशय लौटा दें तो सदा के लिए उनका दुश्मन बन जाता है और "टक्कर" लड़ाने के लिए नई पत्रिका की सृष्टि करता है। इस तरह हिन्दी-साहित्य पुष्ट होने के बजाय बलहीन हो जाता है। यह लोग अपनी शक्ति का अपव्यय करके अपना, समाज और भाषा—सभी का उपकार करने के बहाने निरा अपकार करते हैं। रोगी, दुखी और अल्पायु दस पुत्रों से जिस तरह बलिष्ठ और दीर्घायु एक पुत्र अच्छा है, अनेक रद्दी पुस्तकों से अच्छी एक पुस्तक उत्तम है। किन्तु इनको समझाना बहुत कठिन काम है। समझानेवाले को ये दुश्मन समझते हैं और उसे उचित एवं अनुचित रीति से बदनाम करने लगते हैं। कुछ लोग पिङ्गल को पीकर ही कविता का श्राद्ध करने लगते हैं। उनकी रूखी-सूखी और छन्दःशास्त्र की बेड़ियों से बेतरह जकड़ी हुई कविता से भी मातृभाषा का उपकार होना कठिन है। ये लोग मात्राएँ गिनकर रस का नाश कर देते हैं। अँगरेजों में इसी लिए भगवती कविता को उसके स्वतन्त्र भक्तों ने तुक की पख से भी मुक्त कर दिया है। स्वतन्त्र जाति के परम स्वतन्त्र कवि कविता के इस बन्धन को कब देख सकते थे। समय के परिवर्तन के साथ कविता

करने के ढङ्ग में भी परिवर्तन हो जाता है। मौलाना हाली कहते हैं—"क़ायदा है कि जिस क़दर सोसाइटी के खयालात, उसकी राएँ, उसकी आदतें, उसकी रग़बतें, उसका मेलान और मज़ाक बदलता है उसी क़दर शेर (कविता) की हालत बदलती रहती है और यह तब्दीली बिलकुल बे-मालूम होती है। क्योंकि सोसाइटी की हालत को देखकर शाइर क़स्दन अपना रंग नहीं बदलता बल्कि सोसाइटी के साथ-साथ वह ख़ुद ब ख़ुद बदलता जाता है।" –

कवि जितना प्रतिभाशाली होगा उसकी कविता भी उतनी ही बढ़िया होगी। बिना प्रतिभा (Imagination) के कोई मनुष्य कवि नहीं बन सकता। कविता के लिए प्रतिभा उतनी ही ज़रूरी है जितना प्रकाश के लिए दीपक में तेल। प्रतिभा प्रकृतिदत्त चीज़ है, ईश्वर ही उसे दें तो देते हैं, अभ्यास के द्वारा वह पैदा नहीं की जा सकती, बढ़ाई ज़रूर जा सकती है। प्रतिभा के द्वारा ही कवि अपनी कविता को ऐसे मनोहर भावों से सजाता है कि उसमें चमत्कार आ जाता है। उसे सुन-कर लोग मोहित हो जाते हैं। जिन बातों को हम कहते हैं उन्हें ही कवि कहता है पर हमारे कहने और उसके कहने में कितना अन्तर है। यहाँ निरी बात में बात है, वहाँ बात में बात है। किसी ने कितना अच्छा कहा है—

यानेव शब्दान् वयमालपामो यानेव चार्थान् वयमुल्लिखामः।
तैरेव विन्यासविशेषभव्यैः संमोहयन्ते कवयो जगन्ति॥

प्रतिभा के अतिरिक्त कवि को प्रकृति-पर्य्यालोचन की भी बड़ी ज़रूरत है। जिस कवि का प्रकृति पर्य्यालोचन जितना ऊँचा होता है उसकी कविता भी उतनी ही उत्कृष्ट होती है। प्रातःकाल, सायङ्काल, ऋतु-परिवर्तन और अन्य ऐसे ही दैनिक प्राकृतिक व्यापारों को कवि असाधारण रीति से देखता है और उनका अध्ययन करके अनेक अनोखे तत्त्व मालूम करता है। बाद को अपनी ईश्वर-दत्त प्रतिभा के बल से उन्हीं तत्त्वों द्वारा अच्छे काव्य की रचना करता है। प्रकृति-पर्य्यालोचन से मतलब जड़ और चेतन दोनों प्रकृतियों के पर्य्यालोचन से है। मानसिक घात-प्रतिघातों का भी उसे अध्ययन करना पड़ता है। हर्ष, शोक, लज्जा, क्रोध आदि भावों के उदय होने पर मनुष्य के मन की कैसी अवस्था हो जाती है और उस समय उसके कार्य्य-कलाप किस ढङ्ग के होते हैं—इन भीतरी अतएव बारीक बातों का भी उसे पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त करना होता है। इन्हीं सब बातों को सादगी से वर्णन करके कवि अतुल यश की प्राप्ति करता है। नीचे उर्दू के सुप्रसिद्ध कवि डाक्टर मुहम्मद इक़बाल एम० ए०, पी-एच० डी० की एक कविता हम उद्धृत करते हैं। उसका शीर्षक "एक अभिलाषा" है। उसमें कवि ने कितनी सादगी से अपनी अभिलाषा को प्रकट किया है और कैसा स्वर्गीय भाव-पूर्ण चित्र पाठकों के सामने उपस्थित किया है। कविता के प्रत्येक पद्य में कवि की प्रखर प्रतिभा और उसके गंभीर प्रकृति-पर्य्यालोचन का पता मिलता है। देखिए—

दुनिया की महफ़िलों से उकता गया हूँ या रब।
क्या लुत्फ़ अंजुमन में जब दिलही बुझ गया हो॥ १ ॥
शोरिश से भागता हूँ दिल ढूँढ़ता है मेरा।
ऐसा सिकून जिस पर तक़दीर भी फ़िदा हो॥ २ ॥
मरता हूँ ख़ामुशी पर यह आरज़ू है मेरी।
दामन में कोह के इक छोटा सा झोंपड़ा हो॥ ३ ॥
आज़ाद फ़िक्र से हूँ उज़लत में दिन गुज़ारूँ।
दुनिया के ग़म का दिल से कांटा निकल गया हो॥ ४ ॥
लज़्ज़त सरोद की हो चिड़ियों के चहचहों में।
चश्मे की शोरिशों में बाजा सा बज रहा हो॥ ५ ॥
पत्तों का हो नज़ारा मेरी किताब ख़ानी।
दफ़्तर हो माफ़ॅत का जो गुल खिला हुआ हो॥ ६ ॥
गुल की कली चटक कर पैग़ाम दे किसी का।
साग़र ज़रा सा गोया मुझको जहांनुमा हो॥ ७ ॥
हो हाथ का सरहाना सब्ज़े का हो बिछौना।
शर्माये जिससे जिल्वत ख़िल्वत में वह अदा हो॥ ८ ॥
मानूस इस क़दर हो सूरत से मेरी बुलबुल।
नन्हे से दिल में उसके खटका न कुछ मेरा हो॥ ९ ॥
सफ़ बाँधे दोनों जानिब बूटे हरे हरे हों।
नदी का साफ़ पानी तस्वीर ले रहा हो॥ १० ॥
हो दिल फ़रेब ऐसा कुहसार का नज़ारा।
पानी भी मौज बनकर उठ उठ के देखता हो॥ ११ ॥
आग़ोश में ज़मीं के सोया हुआ हो सब्ज़ा।
पैड़ पड़ के झाड़ियों में पानी चमक रहा हो॥ १२ ॥
पानी को छू रही हो झुक झुक के गुल की टहनी।
जैसे हसीन कोई आईना देखता हो॥ १३ ॥

मेंहदी लगाये सूरज जब शाम की दुलहन हो।
सुरखी लिये सुनहरी हर फूल की क़बा हो ॥ १४ ॥
यों वादियों में ठहरे आकर शफ़क़ की सुरखी।
जैसे किसी गली में कोई शकिस्ता-पा हो ॥ १५ ॥
पच्छम को जा रहा हो कुछ इस अदा से सूरज।
जैसे कोई किसी के दामन को खींचता हो ॥ १६ ॥
रातों को चलनेवाले रह जायँ थक के जिस दम।
उम्मेद उनकी मेरा टूटा हुआ दिया हो ॥ १७ ॥
बिजली चमक के दिन को कुटिया मेरी दिखादे।
जब आस्माँ पै हरसू बादल घिरा हुआ हो ॥ १८ ।
पिछले पहर की कोयल वह सुबह की मोअज़्ज़न।
मैं उसका हमनवा हूँ वह मेरी हमनवा हो ॥ १९ ॥
कानों पै हो न मेरे दहरो हरम का अहसाँ।
रोज़न ही झोंपड़ी का मुझको सहरनुमा हो ॥ २० ॥
ज़ुल्मत झलक रही हो इस तरह चांदनी में।
जूँ आंख में सहर की सुर्मा लगा हुआ हो ॥ २१ ॥
फूलों को आये जिस दम शबनम वज़ू कराने।
रोना मेरा वज़ू हो नाला मेरी दुआ हो ॥ २२ ॥
दिल खोलकर बहाऊँ अपने वतन पै आंसू।
सरसब्ज़ जिसके नम से बूटा उमेद का हो ॥ २३ ॥
इस ख़ामुशी में जायें इतने बुलन्द नाले।
तारों के काफ़ले को मेरी सदा दरा हो ॥ २४ ॥
हर दर्दमन्द दिल को रोना मेरा रुला दे।
बेहोश जो पड़े हैं शायद उन्हें जगा दे ॥ २५ ॥

पाठक, ऊपर की कविता कितनी साफ और स्वाभाविक आपने देखा डाक्टर अक़बाल ने कैसी शुभ इच्छा प्रकट

की है। कविजनोचित चमत्कारपूर्ण वर्णन के साथ कहीं नाम को अस्वाभाविकता नहीं आने पाई है। कितनी सरस है, पढ़नेवाले अनुभव ही कर सकते हैं, वर्णन नहीं। प्रकृति के छोटे से छोटे परिवर्त्तन को कवि बड़े ध्यान से देखता है। सुखी-दुखी स्त्री-पुरुष सभी की अवस्थाओं का उसे यथावत् ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है। दृष्टान्त में मौलाना हाली को ही लीजिए। आपने एक कविता लिखी है, नाम है—मुनाजाते बेवा अर्थात् विधवाभिविनय। इस कविता में मौलाना हाली ने एक भारतीय बाल-विधवा की दु:ख-पूर्ण शोचनीय दशा का चित्र खींचा है। कविता को पढ़कर पाषाण-हृदय पुरुषों का हृदय भी पिघल सकता है। उसमें किया गया वर्णन इतना स्वाभाविक है कि बाल-विधवा की शोचनीय अवस्था का चित्र आँखों के सामने फिरने लगता है। हृदय में उसके लिए सहानुभूति का गहरा भाव पैदा हो जाता है। पाठक, देखिए मौलाना हाली ने अपनी स्वाभाविक भाषा में विधवा के मानसिक सन्तापों का कैसा वर्णन किया है—

ऐ सबसे अव्वल और आखिर। जहाँ तहाँ हाज़िर और नाज़िर ॥१॥
ऐ सब दानाओं से दाना। सारे तवानाओं से तवाना ॥२॥
ऐ समझे बूझे बिन सूझे। जाने पहचाने बिन बूझे ॥३॥
ऐ अन्धों की आंख के तारे। ऐ लँगड़े लूलों के सहारे ॥४॥
जोत है तेरी जल और थल में। बास है तेरा फूल और फल में ॥५॥
तू है ठिकाना मिस्कीनों का। तू है सहारा ग़मगीनों का ॥६॥
तू है अकेलों का रखवाला। तू है अँधेरे घर का उजाला ॥७॥

लागू अच्छे और बुरे का। खाहाँ खोटे और खरे का ॥८॥
बैद निराले बीमारों का। गाहक मन्दे बाज़ारों का ॥९॥
ऐ दीन और दुखिया के मालिक। राजा और प्रजा के मालिक ॥१०॥
पूरब पच्छम दक्खन उत्तर। बख़्शिश तेरी आम है घर घर ॥११॥
प्याव लगी है सबके लिए याँ। खाह हो हिन्दू खाह मुसलमाँ ॥१२॥
चिउँटा कीड़ा मच्छर भुनगा। कछुवा मेंडक सीप और घोंघा ॥१३॥
सारे पंछी और पखेरू। मोर पपीहा सारस पीरू ॥१४॥
भेड़ और बकरी शेर और चीते। तेरे जिलाये हैं सब जीते ॥१५॥
सीप को बख़्शी तूने दौलत। और बख़्शा मक्खी को अमृत ॥१६॥
हीरा बख़्शा कान को तूने। मुश्क दिया हैवान को तूने ॥१७॥
जुगनूँ को बिजली की चमक दी। ज़र्रे को कुन्दन की दमक दी ॥१८॥

इस तरह ईश्वर-प्रार्थना करके मौलाना हाली बाल-विधवा के दु:खों और उसकी अनिर्वचनीय अवस्था का उसके मुँह से ही वर्णन कराते हैं—

पेड़ हों छोटे या कि बड़े यां। फ़ैज़ हवा का सब पै है यक साँ ॥१९॥
जब अपनी ही ज़मीं हो कल्लर। फिर इल्ज़ाम नहीं कुछ मेंह पर ॥२०॥
सबको तेरे इनआम थे शामिल। मैं ही न थी इनआम के क़ाबिल ॥२१॥
गर कुछ आता बांट में मेरे। सब कुछ था सरकार में तेरे ॥२२॥
थी न कमी कुछ तेरे घर में। नौन को तरसी मैं साँभर में ॥२३॥
राजा के घर पली हूँ भूखी। सदाब्रत से चली हूँ भूखी ॥२४॥
पहरों सोचती हूँ यह जी में। आई थी क्यों मैं इस नगरी में ॥२५॥
होने से मेरे फ़ायदा क्या था। किस लिए पैदा मुझको किया था ॥२६॥
आन के आख़िर मैंने लिया क्या। मुझको मेरी क़िस्मत ने दिया क्या ॥२७॥
नैन दिये और कुछ न दिखाया। दाँत दिये और कुछ न चलाया ॥२८॥
भरी सभा में। प्यासी रही भरी गंगा में ॥२९॥

चैन से जागी और न सोई। मैं न हँसी जी भर के न रोई ॥३०॥
खाया तो कुछ मज़ा न आया। सोई तो कुछ चैन न पाया ॥३१॥
फूल हमेशा आँख में खटके। और फल सदा गले में अटके ॥३२॥
बाप और भाई चचा भतीजे। सब रखती हूँ तेरे करम से ॥३३॥
पर नहीं पाती एक भी ऐसा। जिसको हो मेरी जान की परवा ॥३४॥
घर है यह इक हैरत का नमूना। सौ घरवाले और घर सूना ॥३५॥
दुख में नहीं याँ कोई किसी का। बाप न मां भाई न भतीजा ॥३६॥
सच यह किसी साईं की सदा थी। "सुख संपत का हर कोई साथी" ॥३७॥

पाठक, आपने देखा मौलाना हाली ने विधवा के अनिर्वचनीय तापों का कैसा स्वाभाविक वर्णन किया है। यह उनके मानसिक भावों के गहरे पर्य्यालोचन का फल है। कवि, अच्छे-बुरे सभी विषयों का ऐसा सजीव वर्णन करता है कि मानो वह उन विषयों में स्वयं प्रवेश कर चुका है। उन सुखों या दु:खों को वह मानो भोग चुका है; स्वयं उनका अनुभव कर चुका है। किन्तु है यह बात नहीं। कवि अपनी प्रखर प्रतिभा के बल से कल्पना द्वारा सब विषयों का प्रत्यक्ष करता है। मौलाना हाली विधवावस्था में प्रवेश थोड़े ही कर सकते थे? उन्होंने कल्पना और प्राकृतिक ज्ञान की सहायता से ये बातें जानी थीं। इसी तरह कवि जब किसी शराबी का चित्र खींचता है तब एक पक्के शराबी की जो गिरी हुई दशा होती है वह आँखों के सामने नहीं मन के सामने आ जाती है। उस पूर्ण चित्र को देखकर यह धोखा होता है कि कवि स्वयं शराबी होगा अन्यथा वह उस दशा का ऐसा बढ़िया

वर्णन नहीं कर सकता था या ऐसा पूर्ण चित्र नहीं खींच सकता था। किन्तु ऐसा समझना ठीक नहीं। कवि का साम्राज्य बहुत विस्तृत है। कल्पना द्वारा इहलोक परलोक और तीनों कालों की बातें वह हस्तामलकवत् देखता है। कविता करनेवालों में इस शक्ति के होने की बड़ी ज़रूरत है। कवि किसी बड़ी घटना या व्यापार को ही ग़ौर से देखता हो यह बात नहीं। छोटी से छोटी बात को भी वह बड़ी सावधानता से देखता है। वह फूल के साथ लगे काँटे को भी उसी अर्थ-पूर्ण दृष्टि से देखता है। मनुष्यों के साधारण कार्य्य-कलापों में वह असाधारण बातें देखता है और इसी शक्ति के प्रभाव से रोज़ होनेवाली बातों को लेकर वह अपने काव्य को मनोहारी करता है। जिन लोगों ने डाक्टर सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के उपन्यास देखे होंगे नहीं—ध्यानपूर्वक पढ़े होंगे वे अवश्य जानते होंगे कि ठाकुर महाशय ने मानसिक घात-प्रतिघातों का सूक्ष्म विश्लेषण करके—दैनिक साधारण बातों से—कैसी असाधारण पर स्वाभाविक बातें पैदा की हैं। बड़े-बड़े वाक्य या अघटनीय घटनाओं से काव्य सरस बनने के बजाय नीरस हो जाता है। मौलाना हाली ने काव्य-विषयक इन सब बातों का विवेचन अपने लेख में बड़ी ख़ूबी के साथ किया है। जो लोग कविताप्रेमी हैं और उर्दू पढ़ सकते हैं उन्हें मौलाना हाली के उस लेख को अवश्य पढ़ना चाहिए। वह उनके दीवान (काव्य-सङ्ग्रह) के साथ छपा है और बड़ी साँची के पूरे २२८ पृष्ठों

पर समाप्त हुआ है। हमारा विचार था कि उसमें से कुछ अवतरण देकर पाठकों का उस लेख से विशेष रूप से परिचय करायें किन्तु विस्तार-भय से हमें वह विचार छोड़ना पड़ा।

मौलाना हाली पद्य के कवि ही न थे वे गद्य भी वैसा ही लिखते थे। उनके लिखे उर्दू ग्रन्थ उर्दू-गद्य-साहित्य में उज्ज्वलतम रत्न हैं। बा महावरा और मनोमोहक गद्य लिखने में प्रो० आज़ाद से वे निस्सन्देह पीछे थे किन्तु उनकी भाषा भी सोलह आना टकसाली और भावपूर्ण होती थी। प्रो० आज़ाद की बराबरी करनेवाला गद्य-लेखक तो उर्दू-जगत् ने अभी पैदा नहीं किया है। मौलाना हाली का सबसे बड़ा गद्य-ग्रन्थ "हयाते-जावेद" या सर सय्यद का जीवनचरित है। मौलाना हाली ने सर सय्यद का जैसा अच्छा जीवन-चरित लिखा है कोई और लिख सकता है या नहीं इसमें भारी सन्देह है। हाली सय्यद के आरम्भ से साथी थे। उनके अन्तरङ्ग मित्र थे, उर्दू के प्रकाण्ड पण्डित थे। उत्तम और आदर्श जीवन-चरित जैसा होना चाहिए मौलाना हाली ने उसे वैसा ही बनाया है। उस एक ग्रन्थ को ही पढ़कर मुसलमानों की सामाजिक, धार्मिक अवस्था और तात्कालिक अनेक बातों का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। उर्दू भाषा के भाण्डार मे ऐसा दूसरा जीवन-चरित्र नहीं है। इसके अतिरिक्त आपने परम नीतिज्ञ शेख़ सादी का जीवन-चरित भी लिखा है। बड़ा अच्छा ग्रन्थ है। आपने हकीम नासिर खुसरू का जीवन-

चरित भी लिखा है। उसकी भाषा फ़ारसी है। बड़ी ही मीठी और शुद्ध फ़ारसी है। उससे आपकी फ़ारसी-योग्यता का परिचय मिलता है।

मौलाना हाली प्रकृति के ज़बरदस्त पर्य्यालोचक थे। भाव-चित्रण के साथ आपकी भाषा भी ख़ूब स्वाभाविक होती थी। उन्होंने ही उर्दू भाषा में स्वाभाविक कविता करने का मार्ग उन्मुक्त किया। सय्यादो बुलबुल और रुख़ो ज़ुल्फ़ के बेकार क़िस्से को छोड़कर आपने उसमें मनुष्य की स्वाभाविक वृत्तियों का चित्रण किया। आरम्भ में अनेक कवियों और पुरानी लकीर के फ़क़ीर मुल्लाओं ने उनकी कविता को रूखी और रस-हीन बताया, किन्तु अन्त में सभी ने उनकी कविता का अनु-करण किया। हाली ने उर्दू में कविता का एक बिलकुल नया मार्ग बनाया और आज बड़े-बड़े कवि उसी पथ के पथिक हैं। \उर्दू का जो काव्य शृङ्गार-रस के उच्छिष्ट वर्णन से भ्रष्ट हो रहा था वह आपकी प्राकृतिक और स्वाभाविक उक्तियों से लहलहा उठा।\ मौलाना हाली के काव्य-गुरु मिर्ज़ा ग़ालिब ने जिस तरह उर्दू-गद्य का प्रवाह बदला था उसी तरह शिष्य हाली ने पद्य के कण्टकपूर्ण मैदान को साफ़ करके वाटिका के रूप में परिवर्त्तित कर दिया। मौलाना हाली की जिन पुस्तकों का ऊपर उल्लेख हुआ उनके अतिरिक्त उन्होंने और भी कई उर्दू-ग्रन्थ लिखे हैं। आपकी लिखी एक स्त्री-पाठ्य पुस्तक भी है। वह ख़ूब सरस और शिक्षा-प्रद है।

मौलाना हाली के ग्रन्थों की सर्वप्रियता के विषय में इतना लिखना ही काफ़ी होगा कि उनके अनेक ग्रन्थों का अनुवाद उनके सामने ही अनेक भाषाओं में हो गया। मुनाजाते बेवा का अनुवाद कोई दस भाषाओं में हुआ। किन्तु मौलाना के इस ग्रन्थ को सबसे बड़ी प्रतिष्ठा उसके संस्कृत अनुवाद के कारण मिली। उर्दू-साहित्य में जहाँ तक हम जानते हैं वह पहली पुस्तक है जिसका अनुवाद देववाणी में हुआ है। संस्कृत में उसका नाम "विधवाभिविनयः" है और उसके रचयिता महाविद्यालय ज्वालापुर के भूतपूर्व अध्यापक श्री पण्डित भीमसेन शर्मा हैं। पण्डितजी ने भी उसके पद्यानुवाद में कमाल किया है। उस अनुवाद को पढ़कर श्रद्धेय पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी ने लिखा था—"हमें यह अनुवाद मूल से भी अधिक सरस मालूम हुआ।" मौलाना हाली की रुबाइयों का अँगरेज़ी अनुवाद छपे बहुत दिन हुए। आपकी रुबाइयों का परिचय हमने पहले अध्याय के अन्त में दिया है। आपकी रुबाइयाँ ख़ूब प्रभावोत्पादक हैं। नीचे की रुबाई में मौलाना हाली ने विरोधालङ्कार के साथ कैसी अच्छी बात कही है सहृदय पाठक देखिए—

दौलत की हविस अस्ल गदाई है—यह,
सामान की हिर्स बेनवाई है—यह।
हाजत कम है तो है शाहंशाही।
और कुछ नहीं हाजत तो ख़ुदाई है यह ॥१॥

आपकी लिखी हुई अनेक कविताएँ और निबन्ध सिन्ध, पञ्जाब और प्रयाग के विश्वविद्यालयों द्वारा स्वीकृत पाठ्य-पुस्तकों में अभी तक विद्यमान हैं।

आपकी योग्यता पर मुग्ध होकर गवर्नमेन्ट ने आपको शम्स-उल-उल्मा (महामहोपाध्याय) की प्रतिष्ठित उपाधि से विभूषित किया था।

आप एक बहुत ही सन्तोषप्रिय धार्मिक सज्जन थे। जो कुछ मिलता था उसी में अपना काम प्रतिष्ठा और शान्ति के साथ चलाते थे। आप चाहते तो अनायास किसी बड़े पद की प्राप्ति कर सकते थे। सर सय्यद के इशारे पर आपको हैदराबाद दकन या ब्रिटिश गवर्नमेण्ट में ही कोई अच्छा पद मिल सकता था किन्तु आपने अपने विषय में किसी से कुछ नहीं कहा। आपका हृदय अत्यन्त शुद्ध था। उसमें किसी के लिए घृणा या द्वेष का नाम न था। हिन्दू और मुसलमान दोनों आपके कृपाभाजन थे। पक्षपात आपमें नाम को न था।

हाली बड़े निष्पक्षपात थे, इस विषय में हमें एक बात याद आ गई। कई वर्ष हुए मित्रवर पण्डित पद्मसिंहजी शर्म्मा ने "सतसई-संहार" नाम का एक लेख सरस्वती में लिखा था। वह कई मास तक सरस्वती में धारावाहिक रूप से निकला था। उस लेख में उन्होंने किसी जगह बिहारी के दोहे की अत्यधिक किन्तु समुचित प्रशंसा कर दी। यही नहीं उर्दू के किसी अन्तः-सार-विहीन शेर से उसकी तुलना

भी कर दी और यह भी लिख दिया कि दोहे के सामने शेर कुछ भी नहीं। यह बात "राम" नाम के किसी महाशय को बहुत बुरी लगी। उन्होंने उसके प्रतिवाद में एक लेख सरस्वती-सम्पादक के पास भेजा। सरस्वती-सम्पादक ने उस लेख को शर्म्माजी के पास भेजकर "कैफ़ियत" तलब की। शर्म्माजी ने "राम" महाशय के लेख और अपनी सफ़ाई को कविवर हाली के पास भेज दिया और इस विषय में उनकी सम्मति चाही। हाली से शर्म्माजी का परिचय था, हाली भी आपकी काव्य-सम्बन्धी मर्म्मज्ञता पर मुग्ध थे। इसीलिए स्वास्थ्य अच्छा न होते हुए भी हाली ने शर्म्माजी को पत्र लिखा और अपना मत दोहे के पक्ष में देकर अपनी निष्पक्षपात-मनोवृत्ति का पवित्र परिचय दिया। हम हाली के उस पत्र को मार्च १९११ की सरस्वती से नीचे उद्धृत करते हैं।

"पानीपत,

६ दिसम्बर, सन् १९१०

जनाबमन—इनायतनामे का जवाब भेजने में इस सबब से देर हुई कि मैं आँखों की शिकायत के सबब लिखता-पढ़ता बहुत कम हूँ। अक्सर तहरीर म दूसरे का मोहताज रहता हूँ और बग़ैर सख़्त ज़रूरत के जवाब नहीं लिखता।

बिहारी-सतसई के दोहे और एक उर्दू शेर के मुताल्लिक़ जो आपने मेरी राय दरयाफ़्त की है सो मेरे नज़दीक शेर को दोहे के मज़मून से कुछ निसबत नहीं। शाइर कैसा ही

नामुमकिन-उल्वकूअ मज़बून बाँधे, जब उसके साथ गोया की क़ैद लगा दे, फिर नामुमकिन नामुमकिन नहीं रहता।

मसलन—ज़ैद बे ऐब होने में गोया फरिश्ता है; या घोड़ा क्या है हवा है; या उसके दाँतों की बत्तीसी गोया मोतियों की लड़ी है; या उसका चेहरा चौदहवीं रात का चाँद है। पस जब कि दोहे के मज़मून में 'मानो' यानी 'गोया' का लफ़्ज़ मौजूद है तो उसमें कोई इस्तिहाला यानी अदमइमकान* बाक़ी नहीं रहता। बरख़िलाफ़ इसके शेर का मज़मून बिलकुल दायरे इमकान से ख़ारिज और नामुमकिन उल्-वकूअ† है। मोतरिज़ जिस दलील से मज़मून शेर के मुताल्लिक़ हद दरजे की नज़ाकत साबित करता है उससे नजाकत का सबत नहीं बल्कि उसकी नफ़ी‡ होती है—

लखनऊ के एक नामवर शाइर ने अपनी मसनवी में बाज़ार की रौनक़ और चहल-पहल इस तरह बयान की है कि "बाज़ार में आबेगौहर का छिड़काव होता है"—ज़ाहिर है कि इस बयान से बजाय इसके कि बाज़ार की रौनक़ साबित हो यह ख़याल होता है कि वहाँ ख़ाक उड़ती होगी, क्योंकि आबेगौहर का छिड़काव ख़ाक को दबा नहीं सकता। इसी तरह शेर मज़कूर का हाल है। क्योंकि—

---

* अदमइमकान = असम्भवता।

† नामुमकिन उल्वकूअ = असम्भव, जो न हो सके।

‡ नफ़ी = अभाव।

ख्वाब में तसवीर का बोसा लेने से साहबे तसवीर* के होठों का नीला पड़ जाना बजाय इसके कि साहबे तसवीर की नजाकत साबित करे बोसा लेनेवाले का जादूगर होना साबित करता है।

मोतरिज़ का यह ऐतराज़ भी सही नहीं है कि ज़ेवर चूँकि मसनूयी† चीज़ है, इसलिए ब्रह्मा या कुदरत को उसका बनानेवाला क़रार देना गलत है। क्योंकि इनसान के तमाम मसनूयात‡ दरहक़ीक़त खुदा के मसनूयात हैं क्योंकि इनसान खुद उसका मसनूअ है। इस पर दलील लाने की कुछ ज़रूरत नहीं है। क्योंकि हर ज़बान में ऐसी हज़ारों मिसालें मौजूद हैं कि इनसान के कामों को मजाज़न खुदा की तरफ़ मनसूब किया गया है, और तसव्वुफ़ और वेदान्तवाले तो इनसान के हर काम को मजाज़न नहीं बल्कि हक़ीक़तन खुदा ही का काम बताते हैं।

ख़ाकसार दुआगो—

अलताफ़ हुसैन हाली।

हाली ने अपने काव्य-सम्बन्धी निबन्ध में एक जगह कवि-वर नसीम की सुप्रसिद्ध 'मसनवी" के कुछ शेर उद्धृत किये हैं और उनमें कुछ दोष दिखाये हैं। उन्होंने हिन्दू कवि-शिरोमणि नसीम के काव्य में ही दोषोद्भावना की हो सो बात नहीं, काव्यसमालोचना करते हुए उन्होंने उर्दू के सुप्रसिद्ध मुसल-

---

* साहबे तसवीर = जिसका वह फ़ोटो है।

† मसनूयी = कृत्रिम।

‡ मसनूयात = रचनाएँ।

मान कवियों के दोष भी स्पष्ट रूप से दिखाये हैं। समालोचक का कर्त्तव्य समझकर ही उन्होंने वैसा किया है। यह बहुत सम्भव है कि उनका मत भ्रान्त हो। उसकी समालोचना करने का हर किसी को अधिकार प्राप्त है किन्तु केवल इसी लिए उन्हें कवि तक न मानना घोर अन्धेर ही नहीं घोरतम अन्याय भी है। कुछ हिन्दूकवि हाली से इसलिए रुष्ट हैं कि उन्होंने नसीम के काव्य में क्यों दोषोद्भावना की। हमारी समझ में हाली ने जो कुछ लिखा है वह किसी बुरे भाव से प्रेरित होकर नहीं लिखा, प्रसङ्गवश और नेकनीयती से ही लिखा है अतएव क्षम्य है।

यह सब कुछ होते हुए भी आप सच्चे मुसलमान थे। जो जाता उससे प्रेमपूर्वक मिलते थे। शहर में आपका बड़ा मान था। पिछले कई वर्षों में आपका स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया था अतएव पानीपत में मकान पर ही रहते थे। कुछ दिनों से प्रायः आपका सारा समय ईश-भजन में व्यतीत होता था।। ३० दिसम्बर की रात को जब सन् १९१४ हमसे, हमेशा के लिए इतिहास में लिखी जाने योग्य अपनी अनेक बातें छोड़कर, बिदा होने के लिए तैयार हो रहा था तभी शम्स-उल-उल्मा मौलाना अल्ताफ़ हुसेन हाली पानीपती ने भी अपनी अनेक यादगारें छोड़कर संसार से प्रस्थान किया। यों तो आपके ग्रन्थ और काव्य आपकी सबसे बढ़कर यादगार हैं, तथापि पानीपत के अनेक गण्य-मान्य मुसलमान सज्जन हाली की याद में वहाँ कितने ही उपयोगी कार्य्य करने के लिए

किया जायगा। अनेक वज़ीफ़े दिये जायँगे। एक छात्र-निवास भी बनेगा। एक पुस्तकालय भी खुलेगा।

हाली का नश्वर शरीर तिरोहित हो गया किन्तु उनकी आत्मा काव्य के अमर कलेवर में सदा वास करती रहेगी। उन्होंने जिस निष्कामभाव से और इसी लिए चुपचाप अपनी जाति की जो महत्त्व-पूर्ण सेवा की है उसका प्रत्येक जाति के कवि को अनुकरण करना चाहिए। आशा है हिन्दी-भाषी सज्जन महाकवि हाली पर लिखे इस निबन्ध और उसके साथ छपे उनके संक्षिप्त काव्य-संग्रह को पढ़कर जहाँ प्रसन्न होंगे वहाँ उनके कर्त्तव्य-पूर्ण जीवन और प्रभाव-पूर्ण काव्य से कुछ उपदेश भी ग्रहण करेंगे।

जिन चार शम्स-उल-उल्माओं ने उर्दू-साहित्य में युगान्तर उपस्थित कर दिया है उनमें से एक हाली भी हैं। बाक़ी तीन महानुभावों के नाम ये हैं—प्रोफ़ेसर मुहम्मद हुसेन आज़ाद, प्रोफ़ेसर ज़काउल्ला और डा० नज़ीर अहमद। दुःख है, उर्दू के ये चारों चाँद एक-एक करके अस्त हो गये। किन्तु इनके ग्रन्थ जब तक उर्दू भाषा है पढ़नेवालों का मनोरञ्जन करते रहेंगे और उनके शुभ नाम को जीवित रक्खेंगे। किसी कवि ने ठीक कहा है—

ते धन्यास्ते महात्मानस्तेषां लोके स्थिरं यशः।
यैर्निबद्धानि काव्यानि ये वा काव्ये प्रशंसिताः॥

महाकवि हाली का काव्य

पहला अध्याय

हाली का काव्य-संग्रह

नं० १ कामिल है जो अज़ल से वह है कमाल तेरा ।
बाक़ी है जो अबद तक वह है जलाल तेरा ॥ १ ॥
है आरिफों को हैरत और मुनकिरों को सकता ।
हर दिल पै छा रहा है रोबे जमाल तेरा ॥ २ ॥
छूटे हुए हैं गो जी पर दिल बँधे हुए हैं ।
मिलने से भी सिवा है छुटना मुहाल तेरा ॥ ३ ॥
दिल हो कि जान तुझसे क्योंकर अज़ीज़ रखिए ।
दिल है सो चीज़ तेरी जाँ है सो माल तेरा ॥ ४ ॥

आदि-काल से तेरी पूर्णता वैसी ही पूर्ण है जैसी आज है। संसार की पूर्णताओं की तरह वह क्रमिक उन्नति से पूर्ण नहीं हुई है। प्रलय काल तक तेरा प्रबल प्रताप और सौन्दर्य एक-रस रहेगा। उसी के द्वारा जगत् का नियमन होता है ॥ १ ॥

सिद्ध पुरुष आश्चर्य्य में और नास्तिक सन्देह में पड़े हुए हैं। तेरे प्रताप के आतङ्क से ऐसा कोई दिल नहीं जो बचा हुआ हो ॥ २ ॥

तेरे मिलने में अनेक विघ्न हैं—इसलिए हमारी हिम्मत ज़रूर टूटी हुई है पर मन में तेरे मिलने की पूरी आशा है।

हे ईश्वर, तेरा मिलना ही मुश्किल हो सो बात नहीं. तेरा छूटना उससे भी अधिक मुश्किल है। हाली के काव्यगुरु महाकवि ग़ालिब ने भी अपनी दार्शनिक भाषा में किस अनोखे ढङ्ग से यही बात कही है—

मिलना तेरा अगर नहीं आसाँ तो सहल है।
दुश्वार तो यही है कि दुश्वार भी नहीं॥ ३॥

दिल और जान दोनों क़ीमती चीज़ें हैं पर तेरे लिए वे दोनों हाज़िर हैं। उन पर अपना अधिकार ही क्या है? वे तो तेरी ही हैं॥ ४॥

नं० २. जहाँ में हाली किसी पै अपने सिवा भरोसा न कीजिएगा।
यह भेद है अपनी ज़िन्दगी का बस इसका चर्चा न कीजिएगा॥१॥
हो लाख ग़ैरों का ग़ैर कोई न जानना उसको ग़ैर हरगिज़।
जो अपना साया भी हो तो उसको तसव्वुर अपना न कीजिएगा॥२॥
लगाव तुममें न लाग ज़ाहिद न दर्दे उल्फ़त की आग ज़ाहिद।
फिर और क्या कीजिएगा आख़िर जो तर्के दुनिया न कीजिएगा॥३॥

संसार में किसी पर भरोसा करना मूर्खता है। अपना ही भरोसा रखना चाहिए। आत्मावलम्बन ही सबसे अच्छा है। इस बात को रहस्य समझो। इस बात को हर एक से कहकर किसी का अपमान न करना। सावधान!॥ १॥

किसी को ग़ैर मत समझो। आत्म-दृष्टि से सभी अपने हैं। पर प्रत्युपकार की आशा से अपनी छाया को भी अपना मत समझो॥ २॥

भक्तजी न आप में लाग है न लगाव और न किसी के प्रेम का दर्द। फिर ऐसी हालत में संसार-त्याग के सिवा और आपको चारा भी क्या है ॥ ३ ॥

नं० ३. वीरां है बाग़ जिस पर फूली नहीं समाती।
मुज़दा सबा ने या रब बुलबुल को क्या सुनाया ॥ १ ॥
ऐ इश्क दिल को रक्खा दुनिया का और न दीं का।
घर ही बिगाड़ डाला तूने बना बनाया ॥ २ ॥
डरते रहेंगे अब हम बे जुर्म भी सज़ा से।
अहसान उसका जिसने नाहक़ हमें सताया ॥ ३ ॥
वाइज़ की हुज्जतों से क़ायल तो हो गये हम।
कोई जवाब शाफ़ी पर उससे बन न आया ॥ ४ ॥

बाग़ उजड़ा पड़ा है पर बुलबुल ख़ुशी के मारे फूली नहीं समाती। ईश्वर जाने वसन्त-वायु ने उसके कान में ख़ुशी की क्या बात कह दी है! उर्दू के किसी सुकवि ने इसी विषय पर एक और ही तरह की उत्प्रेक्षा की है। सुनिए वह कहता है—

शिगूफ़ा कौन सा बादे सबा ने छोड़ दिया।
कि आज तक गुलो बुलबुल में बोल चाल नहीं ॥ १ ॥

प्रेम तूने हमें कहीं का न रक्खा। दुनिया और दीन—इहलोक और परलोक—कहीं का भी नहीं। सच यह है कि तूने बना-बनाया घर ही बिगाड़ डाला ॥ २ ॥

अब तक बिना अपराध किये दण्ड से न डरा करते थे। पर अब हमारी वह धारणा बदल गई। हम उस कृपालु के

बहुत कृतज्ञ हैं जिसने हमें निरपराध होने पर भी दण्ड दिलाया। इस तरह उसने बिना अपराध किये भी हमें डरते रहने की शिक्षा दे दी। उसकी इस महती कृपा का बार-बार धन्यवाद। कैसा खरा शाइराना ख़याल है॥ ३॥

उपदेशकजी ने लड़-झगड़कर हमें क़ायल तो कर दिया किन्तु सच यह है कि उनसे कोई शान्तिप्रद उत्तर तो देते बना नहीं॥ ४॥

नं० ४. दिल में है बाक़ी वही हिर्से गुनाह।
फिर किये पै अपने हम पछतायें क्या॥ १॥
आओ लें उसको हमीं जाकर मना।
उसकी बे परवाइयों पर जायें क्या॥ २॥
दिल को मसजिद से न मन्दिर से है उन्स।
ऐसे वहशी को कहीं बहलायें क्या॥ ३॥
जानता दुनिया को है इक खेल तू।
खेल .क़ुदरत के तुझे दिखलायें क्या॥ ४॥

अभी तक पाप करने की प्रवृत्ति नहीं गई है। ऐसी अवस्था में कृतकर्म्म के लिए क्या पश्चात्ताप हो सकता है॥ १॥

हमीं जाकर उसे मना लायें। उसकी बे परवाइयों पर न जाकर हमें उसके पास ही चला जाना चाहिए। 'जाना' क्रिया को किस बढ़िया ढङ्ग से बाँधा है?॥ २॥

मेरे मन को न मसजिद से राग है और न मन्दिर से प्रेम। अब बताइए ऐसे वहशी को कहाँ जाकर बहलाया जाय? मुश्किल है॥ ३॥

तू दुनिया को खेल समझता है। ऐसी हालत में तुझे क़ुद-रत के खेल दिखाने से क्या लाभ ? ॥ ४ ॥

इसी ज़मीन में महाकवि ग़ालिब कैसे मज़े की बात कहते हैं—

उम्र भर देखा किये मरने की राह।
मर गये पर देखिए दिखलायें क्या ॥
चुपचुपाते उसे दे आये दिल एक बात पै हम।
माल महँगा नज़र आता तो चुकाया जाता ॥ १ ॥
शब को ज़ाहिद से न मुटभेड़ हुई ख़ूब हुआ।
नशा ज़ोरों पै था शायद न छिपाया जाता ॥ २ ॥
लोग क्यों शैख़ को कहते हैं कि अय्यार है वह।
उसकी सूरत से तो ऐसा नहीं पाया जाता ॥ ३ ॥
दिल न ताअ़त में लगा—जब तो लगाया ग़मे इश्क़।
किसी धन्धे में तो आख़िर यह लगाया जाता ॥ ४ ॥

हमने सिर्फ़ उसकी एक बात पर अपना दिल दे दिया। न किसी से कहा न सुना, चुपचाप उसे दिल दे डाला। बात यह थी कि उसकी वह बात भी ख़ूब क़ीमती थी। दिल देकर उसे ख़रीदने में हमने उस "माल" को सस्ता ही समझा इसी लिए मोल-तोल नहीं किया ॥ १ ॥

अच्छा ही हुआ रात भक्त महापुरुष से भेंट न हुई। उस समय हमारे ऊपर नशा बेतरह सवार था। उसको छिपाना मुश्किल ही था ॥ २ ॥

शैख़जी को लोग यों ही कपटी बताते हैं। उनकी सूरत से तो इस बात का पता नहीं चलता, देखने में तो बेचारे बड़े सरल मालूम होते हैं ॥ ३ ॥

हमने पहले ईश्वर-भक्ति ही करनी चाही थी पर उसमें हमारा मन लगा नहीं। तभी तो हमने प्रेम का भूत अपने सिर पर चढ़ाया। आख़िर मन को किसी धन्धे में तो लगाना ही चाहिए था ॥ ४ ॥

नं० ६. कुछ करते हैं यहाँ वहीं अँगुश्तेनुमा हैं।
बदनाम ही दुनिया में निको नाम है गोया ॥ १ ॥
नाचीज़ है वह नाम नहीं जिस पै कुछ इल्ज़ाम।
जो काम है उनका यही इनआम है गोया ॥ २ ॥

जिनका जीवन किसी काम में लग रहा है या अपने कर्त्तव्यों की ओर जिनका ध्यान है उन्हीं लोगों पर चारों ओर से अँगुलियाँ उठती हैं। उन्हीं की जहाँ-तहाँ समालोचनाएँ होती हैं। संसार में—मालूम होता है—बदनामी का ही दूसरा नाम नेकनामी है ॥ १ ॥

वे काम जिन पर कोई आक्षेप नहीं करता तुच्छ हैं—सारहीन हैं। क्योंकि आक्षेपों का होना ही अच्छे कामों का पुरस्कार है ॥ २ ॥

नं० ७. रात उनको बात बात पै सौ सौ दिये जवाब।
मुझको ख़ुद अपनी ज़ात से ऐसा गुमाँ न था ॥ १ ॥
रोना है यह कि आप भी हँसते थे वरनाँ यों।
ताने रक़ीब दिल पै कुछ ऐसा गिराँ न था ॥ २ ॥

थी कुछ न कुछ कि फाँस सी इक दिल में चुभ गई।
माना कि उसके हाथ में तीरो सना न था ॥ ३ ॥

रात हमने भी उन्हें ख़ूब छकाया। उनकी एक-एक बात पर सौ-सौ जवाबें दिये। सच तो यह है कि यह निरा इत्त-फ़ाक था वर्ना उनके सामने हमारी ज़ुबान से पूरी बात भी नहीं निकलती थी ॥ १ ॥

मुझे प्रतिद्वन्द्वियों के तानों का उतना दुःख नहीं जितना कि उन तानों पर तुम्हारे हँसने का है। उन्होंने मुझे बुरा-भला कहा तो यह स्वाभाविक ही था पर तुम्हें तो उन तानों पर हँसना नहीं चाहिए था। बस मुझे दुःख है तो इसी बात का है ॥ २ ॥

उसे देखकर मेरे दिल में एक फाँस सी चुभ गई। क्या हो गया समझ में नहीं आया। उसके हाथ में तो उस समय न तीर था और न तलवार। इसी ढङ्ग का एक शेर महाकवि ज़ौक़ का सुनिए—

तुफंगोतीर तो ज़ाहिर न था कुछ पास क़ातिल के।
इलाही फिर जो दिल पर ताककर मारा तो क्या मारा ॥ ३ ॥

नं० ८. उससे नादान ही बनकर मिलिए।
कुछ इजारा नहीं दानाई का ॥ १ ॥
दरमियाँ पाये नज़र है जब तक।
हमको दावा नहीं बीनाई का ॥ २ ॥
कुछ तो है क़द्र तमाशाई की
है जो यह शौक़ खुद आराई का ॥ ३ ॥

होंगे हाली से बहुत आवारा ।
घर अभी दूर है रुसवाई का ।। ४ ।।

वहाँ बुद्धिमानी का काम नहीं। नादान बनकर ही काम निकल सकता है। बुद्धिमानी का वहाँ कोई इजारा नहीं। उससे तो उलटा काम बिगड़ जाने का भय है ।। १ ।।

जब तक दृष्टि का पर्दा बीच में पड़ा है उस समय तक 'दर्शन' का दावा बेकार है—फ़िज़ूल है। चर्म्मचक्षु के सहारे आत्म-साक्षात्कार का दावा करना फ़िज़ूल ही नहीं अत्यन्त असम्भव है ।। २ ।।

वे शृङ्गार करने में ख़ूब तत्पर हैं। इससे अनुमान होता है कि उनके दिल में देखनेवालों की भी कुछ क़द्र है। शोभा-वृद्धि के साथ शोभा को देखनेवालों की भी ज़रूरत है ।। ३ ।।

हाली जैसे आवारा आदमी अनेक हैं। जिसका नाम रुसवाई है—बदनामी है—उसका घर अभी बहुत दूर है। हाली की अभी वहाँ तक पहुँच नहीं है ।। ४ ।।

नं० ६. देख ये उमेद, कीजो हमसे न तू किनारा।
तेरा ही रह गया है ले देके इक सहारा ।। १ ।।
मैख़ाने की ख़राबी जी देखकर भर आया।
मुद्दत के बाद कल वां जा निकले थे क़ज़ारा ।। २ ।।
अफ़सोस अहले दीं भी मानिन्द अहले दुनिया।
ख़ुद काम ख़ुदनुमा हैं ख़ुदबी हैं और ख़ुद आरा ।। ३ ।।
उम्मत को छाँट डाला काफ़िर बना बनाकर।
इसलाम है फ़क़ी हो, ममनूँ बहुत तुम्हारा ।। ४ ।।

आशा देवि, तुम हमें मत छोड़ना। तेरे सिवा अब हमें किसी का सहारा नहीं है ॥ ४ ॥

शराब-घर की हालत देखकर जी भर आया। बहुत दिनों बाद कल उधर इत्तफ़ाक़ से जा निकले थे। माघ के "इच्छा-विहार वनवास-महोत्सव" की तरह हमें भी अपनी मस्ती के दिन याद आ गये। कविवर माघ अपने महाकाव्य के पाँचवें सर्ग में एक हाथी की दशा का वर्णन करते हैं जो वन को देखकर मस्त हो गया था। देखिए—कैसा स्वाभाविक वर्णन है—

क्षिप्तं पुरो न जगृहे मुहुरिक्षुकाण्डं, नापेक्षते स्म निकटोपगतां करेणुम्।
स स्मार वारणपतिः परिमीलिताक्षमिच्छाविहारवनवासमहोत्सवानाम्॥

सांसारिक पुरुषों की तरह परमार्थ-प्रिय पुरुष भी घोर अभिमानी हैं। उन्हें अपने साधन भजन का अभिमान है। "अहंकार राक्षस" के हाथ से सच तो यह है किसी का छुटकारा नहीं।

विधि-निषेध का पचड़ा लगाकर धर्माचार्यजी, आपने जाति की जाति को 'भ्रष्ट' क़रार दे दिया, सभी को अयोग्य ठहरा दिया। सच तो यह है कि आपने जाति का कुछ कम उपकार नहीं किया है इसलिए आप धन्य हैं!

नं० १०. कलक और दिल में सिवा हो गया।
दिलासा तुम्हारा बला हो गया ॥ १ ॥
सबब हो न हो लब पै आया ज़रूर।
मेरा शुक्र उसका गिला हो गया ॥ २ ॥
वह उम्मेद क्या जिसकी हो इन्तहा।
वह वादा नहीं जो वफ़ा हो गया ॥ ३ ॥

हुआ रुकते रुकते दम आख़िर फ़ना।
मरज़ बढ़ते बढ़ते दवा हो गया ॥ ४ ॥

उनकी सान्त्वना से दिल का दर्द और दूना हो गया। उनकी सान्त्वना से विरह-दुःखों की स्मृति ने चित्त को और बेचैन कर दिया।

मैं हर समय ही उसका धन्यवाद करता रहता हूँ। इस कारण हर समय ही उसकी ज़ुबान पर अकारण गिले—शिकायत—की तरह—मेरी ज़ुबान पर शुक्र—धन्यवाद—चढ़ा रहता है ॥ २ ॥

वह आशा क्या जो पूरी हो जाय इसी लिए जिसका अन्त हो जाय और वह वादा क्या जो पूरा हो जाय। प्रेमिक लोगों को इसी तरह की आशा और वायदे से वास्ता पड़ता है ॥ ३ ॥

श्वास रुकते-रुकते निकल ही गया—छूट ही गया—रोग ही स्वयं बढ़कर दवा बन गया। किन्तु महाकवि ग़ालिब इसी बात को दार्शनिक ढङ्ग से इस तरह कहते हैं—

इशरते-क़तरा है दरिया में फ़ना हो जाना।
दर्द का हद से गुज़रना है दवा हो जाना ॥ ४ ॥

नं० ११. जो करेंगे भरेंगे—ख़ुद वाइज़।
तुमको मेरी ख़ता से क्या मतलब ? ॥ १ ॥
जिनके माबूद हूरो गुलमां हैं।
उनको ज़ाहिद ख़ुदा से क्या मतलब ? ॥ २ ॥
काम है मर्दुमी से इन्सां की।
ज़ुहद या इत्तक़ा से क्या मतलब ? ॥ ३ ॥

है अगर रिन्द दामन आलूदह।
हमको चूनो चरा से क्या मतलब ? ॥ ४ ॥
सूफ़िये शहर बासफ़ा है अगर।
हो, हमारी बला से क्या मतलब ? ॥ ५ ॥
नगहते मैं पै ग़श हैं जो हाली।
उनको दुर्दो सफ़ा से क्या मतलब ? ॥ ६ ॥

भक्त जी, दूसरों के दोष देखने से आपका क्या फ़ायदा? जो जैसा करेंगे वैसा भरेंगे—आप मुफ़्त में क्यों परेशान होते हैं ? ॥ १ ॥

हे कर्मकाण्डिन्, जिसका लक्ष्य बहिश्त की हूरें या स्वर्ग की अप्सराएँ हैं उनका ईश्वर से क्या सम्बन्ध ? उनका मुख्य सम्बन्ध तो हूरों से है और उनकी प्राप्ति के साधन-भूत ईश्वर से तो उनका सोलहों आने गौण सम्बन्ध है। महाकवि ज़ौक़ भी इसी बात को कितने अच्छे ढङ्ग से कहते हैं—

कब हक़परस्त ज़ाहिदे जन्नतपरस्त है।
हूरों पै मर रहा है यह शहवतपरस्त है ॥ २ ॥

मनुष्य में मनुष्यत्व देखना चाहिए यह कि वह भक्त है या स्वतन्त्र है इससे किसी को क्या लेना है। कोई मस्त यदि पाप करता है तो हमें उसके पाप से क्या वास्ता ? और यदि कोई मनुष्य धर्म-प्राण ही है तो हुआ करे—हमारी बला से हो—हमें कुछ मतलब नहीं। मद्य की गन्ध पाकर जो बेहोश हो जाते हैं उन्हें इस बात से क्या मतलब कि शराब साफ़ है या गँदली। उनका काम तो उसकी खुशबू से ही चल जाता

है। मनुष्य के गुणों से मतलब रखना चाहिए, उसके दोषों से नहीं। ३—६।

नं० १२. मुझमें वह शिकायत कहाँ है अब।
छेड़ो न तुम कि मेरे भी मुँह में .ज़ुबाँ है अब ॥ १ ॥
वह दिन गये कि हौसल-ये ज़ब्तेराज़ था।
चेहरे से अपने शोरिशे पिनहाँ अयाँ है अब ॥ २ ॥
जिस दिल को क़ैद हस्ति-ये दुनियाँ से नंग था।
वह दिल असीर हलक़ ये ज़ुल्फे बुताँ है अब ॥ ३ ॥
आने लगा जब उसकी तमन्ना में कुछ मज़ा।
कहते हैं लोग जान का इसमें ज़ियाँ है अब ॥ ४ ॥

अब मुझमें शिकायतें सुनने की सहनशक्ति नहीं रही। इसलिए अब मुझे अधिक मत छेड़ो, नहीं तो फिर मेरे भी मुँह में ज़ुबान है—बुरा मत मानना ॥ १ ॥

वे दिन क्या हुए जब हम रहस्यों को छिपाने का साहस रखते थे और अब तो मन की परेशानी चेहरे से टपकी पड़ती है! ॥ २ ॥

एक वह दिन था कि हमारा मन संसार के बन्धन में पड़ना लज्जा की बात समझता था, और एक आज है कि मित्र के केशपाश में वह बेतरह उलझा पड़ा है। कैसा परिवर्त्तन है? ॥ ३ ॥

जब उसको प्राप्त करने की इच्छा में कुछ मज़ा आने लगा तो लोग कहते हैं कि उसकी प्राप्ति में जान जाने का डर है। कुछ हो—पर अब तो वह चसका छूटनेवाला नहीं ॥ ४ ॥

नं० १३. वस्ल के हो हो के सामाँ रह गये।
मींह न बरसा और घटा छाई बहुत ॥ १ ॥
जाँ निसारी पर वह बोल उट्ठे मेरी।
हैं फ़िदाई कम तमाशाई बहुत ॥ २ ॥
हमने हर अदना का आला कर दिया।
ख़ाकसारी अपनी काम आई बहुत ॥ ३ ॥
कर दिया चुप वाक़आते दहर ने।
थी कभी हममें भी गोयाई बहुत ॥ ४ ॥
घट गईं .ख़ुद सख़्तियाँ अय्याम की।
या गई कुछ बढ़ शिकेबाई बहुत ॥ ५ ॥
हम न कहते थे कि हाली चुप रहो।
रास्तगोई में है रुसवाई बहुत ॥ ६ ॥

मिलन के सामान हो-होकर रह गये। घटा तो ख़ूब आई पर मींह न बरसा ॥ १ ॥

मेरी जाँ-निसारी पर—मेरे आत्मसमर्पण पर—वे कहने लगे कि प्रेम करनेवाले कम हैं पर तमाशा देखनेवाले बहुत हैं ॥ २ ॥

हमने तुच्छ से तुच्छ व्यक्ति को महत्व दे दिया। हमारी ख़ाकसारी निस्सन्देह ख़ूब काम आई—उससे लोगों को ख़ूब लाभ पहुँचा ॥ ३ ॥

सांसारिक घटनाओं ने हमें चुप कर दिया नहीं तो हममें भी ख़ूब भाषणशक्ति थी ॥ ४ ॥

सांसारिक दुःख स्वतः ही कम हो गये या हममें ही सहन-शक्ति बढ़ गई—मालूम नहीं। हमें अब दुःखों की उतनी वेदना नहीं होती जितनी पहिले होती थी। इसलिए ऊपर

लिखी दोनों बातों में से एक बात ज़रूर सत्य है। महाकवि ग़ालिब भी इसी बात को दार्शनिक भाषा में कितनी अच्छी तरह कहते हैं। सुनिए—

रञ्ज से ख़ूगर हुआ इंसाँ तो मिट जाता है रञ्ज।
मुश्किलें मुझ पर पड़ीं इतनी कि आसाँ हो गईं ॥ ५ ॥

हाली, हम तुमसे पहले ही कहते थे कि चुप रहना अच्छी बात है। सच बोलने में भी बीसियों तरह की झंझटें हैं ॥ ६ ॥

नं० १४. है ग़मे रोज़ जुदाई न निशाते शबे वस्ल।
हो गई और ही कुछ शामो सहर की सूरत ॥ १ ॥
देखिए शैख़ मुसव्वर से खिचे या न खिचे।
सूरत और आपसे बे ऐब बशर की सूरत ॥ २ ॥
वाइज़ों, आतिशे दोज़ख़ से जहाँ को तुमने।
यह डराया है कि ख़ुद बन गये डर की सूरत ॥ ३ ॥
उनको हाली भी बुलाते हैं घर अपने मेहमाँ।
देखना आपकी और आपके घर की सूरत ॥ ४ ॥

न अब वे वियोग के दिन हैं और न मिलन की रातें। ज़माना बदल गया। सुबहोशाम—'सायं प्रातः' की सूरतें ही बदल गईं ॥ १ ॥

शैख़ जी, कह नहीं सकते आपका चित्र चित्रकार उतार सकेगा या नहीं। आप जैसे निर्दोष व्यक्ति का चित्र खींचना साधारण बात नहीं है ॥ २ ॥

उपदेशको, नरक की अग्नि का भय दिखाते-दिखाते—सच तो यह है—कि तुम स्वयं ही भय की सूरत बन गये ॥ ३ ॥

हाली को तो देखिए। वे भी उन्हें अपने घर बुलाने चले हैं। ज़रा उनकी और उनके घर की सूरत तो देखिए। शिष्य हाली के शेर में गुरु ग़ालिब के इस शेर जैसा गौरव नहीं आ सका—

वह आयें घर में हमारे ख़ुदा की क़ुदरत है।
कभी हम उनको कभी अपने घर को देखते हैं ॥ ४ ॥

नं० १५. तू नहीं होता तो रहता है उचाट।
दिल को यह कैसी लगा दी तूने चोट ॥ १ ॥
नाव है बोसीदा और मौजें हैं सख़्त।
और दरिया का बहुत चकला है पाट ॥ २ ॥
मिल्लतें रस्तों के हैं सब हेर फेर।
सब जहाज़ों का है लङ्गर एक घाट ॥ ३ ॥
बर्क़ मँडलाती है अब किस चीज़ पर।
टिड्डियाँ कब की गईं खेती को चाट ॥ ४ ॥
तेग़ में बुरिश यह ऐ हाली नहीं।
जिस क़दर तेरी ज़ुबाँ करती है काट ॥ ५ ॥
चुटकियां सी दिल में यह लेता है कौन ?
शेर तो ज़ाहिर में हैं तेरे सपाट ॥ ६ ॥

मित्र, जब तुम नहीं होते तब दिल उचाट रहता है। बताओ तो सही तुमने मेरे दिल को यह क्या चोट लगा दी है ॥ १ ॥

मेरी नाव टूटी हुई और लहरें बड़ी विकट हैं। इसके सिवा जिस नद के पार जाना है उसका पाट भी कुछ कम चौड़ा नहीं है ॥ २ ॥

साम्प्रदायिक भेदभाव रास्तों के हेर-फेर के सिवा और कुछ नहीं हैं। जहाज़ किसी रास्ते से क्यों न आयें पर वें सब एक ही बन्दरगाह पर आकर लङ्गर डालते हैं। साम्प्रदायिक भावों का इससे अच्छा समन्वय और क्या हो सकता है। महाभारत में भी लिखा है—

आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रतिगच्छति ॥ ३ ॥

बिजली, तुम किस चीज़ को ताक कर मँडला रही हो? यहाँ की खेती को तो टिड्डियाँ कभी की चाट गईं, अब तुम्हारे लिए क्या धरा है ॥ ४ ॥

ऐ हाली, तलवार में यह तेज़ी कहाँ है? तेरी ज़ुबान तो बुरी तरह "काट" करती है ॥ ५ ॥

तेरे शेर देखने में तो सादे या सपाट मालूम होते हैं, फिर दिल के अन्दर यह क्या चीज़ चुभती मालूम होती है ॥ ६ ॥

नं० १६. बाप का है जभी पिसर वारिस।
हो हुनर का भी उसके गर वारिस ॥ १ ॥
घर हुनरवर का ना ख़लफ़ ने लिया।
तेरा है कौन ऐ हुनर! वारिस ॥ २ ॥
फ़ातहा हो कहां से मय्यत की।
ले गये ढोके सीमो ज़र वारिस ॥ ३ ॥
हम पै बैठे हैं हाथ धोये हरीफ़।
जैसे मुर्दे के माल पर वारिस ॥ ४ ॥

वही पुत्र पिता का उत्तराधिकारी है जो धन के साथ-साथ उसके गुणों को भी सम्हाले ॥ १ ॥

गुणी पिता का घर यदि गुणहीन पुत्र ने ले लिया तो उसके गुण तो लावारिस ही रह गये। उनका तो कोई भी उत्तराधिकारी नहीं हुआ ॥ २ ॥

मृत्यु के बाद शव की औधर्वदैहिक क्रिया किस तरह सम्पन्न हो। रुपये पैसे का तो वारिसों ने घर में निशान नहीं छोड़ा। जो कुछ था सभी ले गये। हा अर्थलोलुपता ! ॥ ३ ॥

हमारे शरीक हम पर इस तरह हाथ धोये बैठे हैं जिस तरह मुर्दे के माल पर वारिस ॥ ४ ॥

नं० १७. भेद वाइज़ अपना खुलवाया अबस।
दिल-जलों को तूने गर्माया अबस ॥ १ ॥
शैख़, रिन्दों में भी हैं कुछ पाक बाज़।
सबको मुलज़िम तूने ठहराया अबस ॥ २ ॥
खेतियाँ जलकर हुईं यारों की ख़ाक।
अब है घिरकर इधर आया अबस ॥ ३ ॥

उपदेशकजी, आपने अपना भेद योंही खुलवाया। अकारण ही आपने दग्धचित्त पुरुषों को गर्माया ॥ १ ॥

शैख़जी, यह न समझिए कि मस्तों में अच्छे आचरणवाले होते ही नहीं। आपका सबको 'एक लाठी से हाँकना' नितान्त अनुचित है ॥ २ ॥

अपनी खेतियाँ तो अनावृष्टि के कारण जलकर ख़ाक हो गईं, नष्ट हो गईं, अब यदि मेघ उमड़कर आये भी

४

तो किस काम के। गोस्वामी तुलसीदास ने भी क्या अच्छा कहा है—

का बरसा जब कृषी सुखाने।
समय चूकि पुनि का पछताने ॥ ३ ॥

नं० १८. बात कुछ हमसे बन न आई आज।
बोलकर हमने मुँह की खाई आज ॥ १ ॥
चुप पै अपनी भरम थे क्या क्या कुछ।
बात बिगड़ी बनी बनाई आज ॥ २ ॥
शिकवा करने की ख़ू न थी अपनी।
पर तबीयत ही कुछ भर आई आज ॥ ३ ॥

हम उसके सामने कुछ भी बात न बना सके। बोलकर हमने ख़ूब मुँह की खाई। कैसी बढ़िया उक्ति है ॥ १ ॥

जब तक चुप थे लोग हम पर न मालूम क्या-क्या भरम कर रहे थे। बोलते ही सबके विश्वास सन्देह में बदल गये। अपनी बनी बनाई बात हमने अपने हाथ से बिगाड़ ली। प्रातः-स्मरणीय महात्मा भर्तृहरि भी कहते हैं—

स्वायत्तमेकान्तगुणं विधात्रा विनिर्मितं छादनमज्ञतायाः।
विशेषतः सर्वविदां समाजे विभूषणं मौनमपण्डितानाम् ॥ ॥

शिकायत करने की हमारी आदत न थी पर करें क्या आज तबीयत ही बेतरह भरी हुई थी। गालिब इससे बहुत ऊँची बात कहते हैं—

क़िस्मत बुरी सही पै तबीअत बुरी नहीं।
है शुक्र की यह जा कि शिकायत नहीं मुझे ॥ ३ ॥

नं० १६. तलखिये दौराँ के हैं सब शिकवा संज।
यह भी है यारो कोई रंजों में रंज॥ १॥
रंजो शादी याँ के हैं सब बे सबात।
और अगर सोचो तो शादी है न रंज॥ २॥
था कनाअत में निहाँ गंजे फराग।
पर हमें बे वक़्त हाथ आया यह गंज॥ ३॥
हमको भी आता था हँसना बोलना।
जब कभी जीते थे हम ऐ बज़्ला संज॥ ४॥

सांसारिक तापों की सभी शिकायत करते हैं। भला ये भी कोई ताप हैं। प्रेमसम्बन्धी तापों के सामने इनकी तपिश बिलकुल ठण्डी है!॥ १॥

संसार के सुख और दुःख सभी अनित्य हैं। और यदि विचार कर देखो तो न सुख है और न दुःख—सभी धोखा है॥ २॥

त्याग में ही सुखों का ख़ज़ाना भर रहा था। अफ़सोस उस ख़ज़ाने का पता हमें बे वक़्त लगा॥ ३॥

ऐ मधुर-भाषी, जब हम जीते थे अर्थात् जब हमारा मन ज़िन्दा था हम भी हँसना-बोलना जानते थे—हमें भी अच्छा बोलना आता था॥ ४॥

नं० २०. हो गरजते जिस क़दर उतने बरसते तुम नहीं।
ऐ फ़सीहो है यह सब गुफ़्तार बेकिरदार हेच॥ १॥
रोई तू आठ आठ आँसू और पसीजा दिल न एक।
निकले मोती तेरे सब ऐ चश्म गौहर बार हेच॥ २॥

गो कि हाली अगले उस्तादों के आगे हेच है।
काश होते मुल्क में ऐसे ही अब दो चार हेच ॥ ३ ॥

ऐ सुवक्ताओ, तुम जितना गरजते हो उतना बरसते नहीं इसलिए तुम्हारा प्रलाप बिलकुल बेकार है। मतलब यह कि जो लोग कहें सब कुछ पर करें कुछ नहीं उनका कहना प्रलाप नहीं है तो और क्या है ? ॥ १

ऐ मोती बरसानेवाली आँख, तू आठ आठ आँसू रोई, खूब रोई पर तेरे रोने से एक दिल भी नहीं पसीजा। इसलिए तेरे मोती सभी झूठे थे : सभी खोटे थे ॥ २ ॥

अगले उस्तादों—मतलब है मीर, सौदा, ग़ालिब आदि महाकवियों से—के सामने हाली निस्सन्देह नगण्य है किन्तु क्या ही अच्छा होता यदि इस समय हाली जैसे और भी दो चार 'नगण्य' होते ॥ ३ ॥

नं० २१. उनके ग़ुस्से में है दिल सोज़ी मलामत में है प्यार।
महरबानी करते हैं ना महरबानों की तरह ॥ १ ॥
काम से काम अपने उनको गो हो आलम नुक्ताचीं।
रहते हैं बत्तीस दाँतों में ज़ुबानों की तरह ॥ २ ॥
ताने सुन सुन अहमकों के हँसते हैं दीवानावार।
दिन बसर करते हैं दीवानों में स्यानों की तरह ॥ ३ ॥
कीजे क्या हाली न कीजे सादगी गर अख़्त्यार।
बोलना आये न जब रंगीं बयानों की तरह ॥ ४ ॥

जब वे ग़ुस्सा करते हैं तब हमारा दिल गर्माता है और जब शर्माते हैं तब उसमें से प्यार की बू आती है। वे नामेहर-

बान बनकर मेहरबानी करते हैं। सीधी और साफ़ मेहरबानी करना तो उन्हें आती ही नहीं ॥ १ ॥

संसार कुछ कहे पर विचारशील पुरुष अपने गन्तव्य पथ से इधर-उधर नहीं होते, वे उनकी समालोचनाओं पर ध्यान नहीं देते—काम किये जाते हैं। देखो न, बत्तीस दाँतों के आघात से बचकर अकेली जीभ किस तरह अपना काम सम्पादन करती रहती है। संस्कृत के इस श्लोक का भाव और भी ऊँचा है—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥ २ ॥

वे लोग, मूर्खों के आक्षेपों को सुनकर पागलों की तरह हँस देते हैं। सच तो यह है कि वे लोग पागलों में बुद्धिमानों की तरह काल-यापन करते हैं ॥ ३ ॥

हाली, सादगी बिना अख़्त्यार किये काम नहीं चल सकता। हमें सुधासूक्तिकारों की तरह बोलना ही नहीं आता। मजबूरी है। इसी लिए भगवती "सादगी" का सहारा लिया है। अनेक काव्य-रसानभिज्ञ लोग हाली के स्वाभाविक काव्य के सौन्दर्य्य को न समझकर उसे अत्यन्त सादा या फीका कहा करते हैं। कुछ उन्हीं लोगों की ओर इस शेर में इशारा है ॥ ४ ॥

नं० २२. करते रहे ख़तायें नदामत के बाद हम।
होती रही हमेशा नदामत ख़ता के बाद ॥ १ ॥

मुद्दत से थी दुआ कि हूँ बदनाम शहर शहर।
बारे हुई कबूल बहुत इल्तजा के बाद ॥ २ ॥

अपराध के बाद हमें लज्जा जरूर होती थी पर लज्जा होने पर भी हम अपराध कर बैठते थे—हाँ यह बात जरूर थी कि, अपराध करके हमें लज्जा आती जरूर थी ॥ १ ॥

तुम कहते हो कि मैं शहर-शहर बदनाम हो गया हूँ। भाई जानते हो यह दिन मैंने बहुत सी प्रार्थनाओं के बाद पाया है। बदनाम होने के लिए तो मैं बरसों से दुआएँ माँग रहा था। इसी तरह का एक और शेर सुनिए—

हम तालिबे शोहरत हैं हमें नङ्ग से क्या काम।
बदनाम गर होंगे तो क्या नाम न होगा ॥ २ ॥

नं० २३। रिया को सिदक से है जामे में बदल देता।
तुम्हें भी है कोई याद ऐसी कीमिया ऐ शैख़ ॥ १ ॥
ख़बर भी है तुम्हें क्या बन रही है बेड़े पर।
हैं आप जौन से बेड़े के नाख़ुदा ऐ शैख़ ॥ २ ॥

शैख़जी, जानते हो शराब का एक प्याला झूठ को सच से बदल देता है। कहिए आपके पास भी कोई ऐसी दवा है—या निरी सूखी बातें ही हैं? ॥ १ ॥

शैख़जी, आप जिस बेड़े के कर्णधार हैं कुछ उसकी भी ख़बर है। उसके ऊपर बुरी बन रही है और आप हैं कि मौज में हैं ॥ २ ॥

नं० २४. उसके कूचे में है वह बेपरो बाल।
उड़ते फिरते हैं जो हवाओं पर ॥ १ ॥

नहीं महदूद बख़्शिश तेरी।
ज़ाहिदों पर न पारसाओं पर॥ २॥
हक़ से दरख़ास्त अफ़ो की हाली।
कीजे किस मुँह से इन ख़ताओं पर॥ ३॥

जो लोग हवाओं पर उड़ते फिरते हैं वे यार के कूचे में जाकर बिलकुल शक्तिहीन हो जाते हैं—पङ्गु बन जाते हैं॥ १॥

ईश्वर सभी पर दया करता है। उसकी कृपाएँ भक्तों और आचारवानों के लिए ही "सुरक्षित" नहीं हैं॥ २॥

ऐ हाली, अपने अपराधों को देखते हुए ईश्वर से किस मुँह से क्षमा माँगें शर्म आती है॥ ३॥

नीचे लिखी ग़ज़ल में अहम्मन्य उपकारकों की कैसी पोल महाकवि हाली ने खोली है, देखिए—

नं० २५. करते हैं सौ सौ तरह से जल्वागर।
एक होता है अगर हममें हुनर॥ १॥
जानते हैं आपको परहेज़गार।
ऐब कोई कर नहीं सकते अगर॥ २॥
अपनी नेकी का दिलाते हैं यक़ीं।
करते हैं नफ़रत बदी से जिस क़दर॥ ३॥
करनी पड़ती है किसी की मदद जब।
करते हैं तकरीर अक्सर मुख़्तसर॥ ४॥
गर किसी का ऐब सुन पाते हैं
करते हैं रुसवा उसे दिल खोलकर॥ ५॥
की नहीं जिससे कभी कोई बदी।
शुक्र के उसने ख़ाई उम्र भर॥ ६॥

एक रंजिश में भुला देते हैं सब।
हों किसी के हम पै लाख अहसां अगर ॥ ७ ॥
ऐब कुछ गिनते नहीं उस ऐब को,।
जिससे हों अपने सिवा सब बे खबर ॥ ८ ॥
बनते हैं यारों के नासह ताकि हो।
ऐब उनका ज़ाहिर और अपना हुनर ॥ ९ ॥
दोस्त इक आलम के पर मतलब के दोस्त।
ऐसे यारों से हज़र यारो हज़र ॥ १० ॥
ऐब हाली अपने यूँ कहता है कौन।
ख़ाहिशे तहसीं है हज़रत को मगर ॥ ११ ॥

इन शेरों का अर्थ ख़ूब साफ़ है। इसलिए इनका अनुवाद नहीं किया जाता है। हाँ, इन शेरों में आये मुश्किल शब्दों का अर्थ चाहें तो पाठक अन्त में दी शब्दार्थ-चन्द्रिका में देख सकते हैं।

नं० २६. होगी न क़द्र जान की क़ुर्बां किये बग़ैर।
दाम उट्ठेंगे न जिन्स के अर्ज़ां किये बग़ैर ॥ १ ॥
गो हो शफ़ा से यास पै जब तक है दम में दम।
बन आयेगी न दर्द का दरमां किये बग़ैर ॥ २ ॥
बिगड़ी हुई बहुत है कुछ इस बाग़ की हवा।
यह बाग़ को रहेगी न वीरां किये बग़ैर ॥ ३ ॥
गो मै है तुन्दो सेर पै साक़ी है दिलरुबा।
ऐ शैख़ बन पड़ेगी न कुछ हां किये बग़ैर ॥ ४ ॥

बिला आत्म-बलिदान के आत्मा की कोई क़द्र नहीं—उसकी कोई महत्ता नहीं। जब तक चीज़ सस्ती न होगी,

उसके दाम न उठेंगे। इस शेर को सुनकर हमारे एक मित्र ने नीचे लिखा हुआ शेर सुनाया—

उठायें क्या मज़ा हमने ज़माने में गरां होकर।
कभी के बिक गये होते जो बिकते रायगाँ होकर ॥ १ ॥

चाहे आराम होने की उम्मेद न हो, पर जब तक दम में दम है रोग की चिकित्सा अवश्य करना चाहिए। "जब तक श्वास तब तक आस" ॥ २ ॥

संसार रूप वाटिका की हवा बहुत बिगड़ी हुई है। मालूम होता है यह बाग़ को बिना नष्ट भ्रष्ट किये नहीं छोड़ेगी ॥ ३ ॥

शैख़जी, इसमें सन्देह नहीं कि शराब तेज़ और कड़वी होती है किन्तु पिलानेवाला बहुत मनोमोहक है इसलिए अब आपको "हाँ" किये बग़ैर नहीं बनेगी ॥ ४ ॥

नं० २७. खेलना आता है हमको भी शिकार।
पर नहीं ज़ाहिद कोई टट्टी की आड़ ॥ १ ॥
दिल नहीं रोशन तो हैं किस काम के।
सौ शबिस्तां में अगर रोशन हैं झाड़ ॥ २ ॥
तुमने हाली खोलकर नाहक़ ज़ुबां।
कर लिया सारी ख़ुदाई से बिगाड़ ॥ ३ ॥

भक्तजी, यह बात नहीं कि हमें शिकार खेलना न आता हो, आता है और ख़ूब आता है पर दुःख इतना ही है कि तुम्हारी तरह हमें टट्टी की आड़ का सौभाग्य नहीं प्राप्त है। 'टट्टी की आड़' पर महाकवि ज़ौक़ भी कितना अच्छा कहते हैं—

है दिल की दाव घात में मिज़गां से चश्मे यार।
करती है कस्द टट्टी की ओझल शिकार का॥ १॥

यदि दिल बुझे हुए हैं और शयनागार में सौ झाड़ भी जल रहे हैं तो वे किसी काम के नहीं दिल रूप दीपक के जलने पर ही बाहर की रोशनियों का भी कुछ महत्त्व हो जाता है अन्यथा नहीं। लखनऊ के आख़िरी दौर के सुप्रसिद्ध कवि अमीर मीनाई कहते हैं—

शाम से ही बुझा सा रहता है।
दिल हुआ है चिराग़ मुफ़लिस का॥ २॥

हाली, तुमने बोलकर अकारण सभी से बिगाड़ कर लिया॥३॥

न० २८ तज़करा देहलि-ये मरहूम का ऐ दोस्त न छेड़।
न सुना जायगा हमसे यह फ़साना हरगिज़॥ १॥
जिसको ज़ख्मों से हवादस के अछूता समझें।
नज़र आता नहीं एक ऐसा घराना हरगिज़॥ २॥
हमको गर तूने रुलाया तो रुलाया चर्ख़।
हम पै ग़ैरों को तो ज़ालिम न हँसाना हरगिज़॥ ३॥
शाइरी मर चुकी अब ज़िंदा न होगी यारो।
याद कर करके उसे जी न कुढ़ाना हरगिज़॥ ४॥
ग़ालिबो शेफ़्ते-ओ नय्यरो आज़ुरदओ ज़ौक़।
अब दिखायेगा यह शकलें न ज़माना हरगिज़॥ ५॥
मोमिनो उलवियो सहबावओ ममनूँ के बाद।
शेर का नाम न लेगा कोई दाना हरगिज़॥ ६॥
दाग़ो मजरूह को सुन लो कि फिर इस गुलशन में।
न सुनेगा कोई बुलबुल का तराना हरगिज़॥ ७॥

बज़्मे मातम तो नहीं बज़्मे सख़ुन है हाली।
याँ मुनासिब नहीं रो रो के रुलाना हरगिज़ ॥ ८ ॥

मित्र, स्वर्गगता देहली देवी का वृत्तान्त न छेड़। वह वृत्तान्त हमसे न सुना जायगा। वह बड़ा ही करुण है। यद्यपि देहली नाम-मात्र को अब भी ज़िन्दा है पर कवियों की दृष्टि में वह कभी की मर गई। उसका कोई घर ऐसा नहीं जिस पर काल का कराल कर न पड़ा हो। कविता तो उसी दिन मर गई जिस दिन कविकुल-चूड़ामणि ग़ालिब, शेफ़्ता, नय्यर, आज़ुर्दा और ज़ौक़ उठ गये। जो सूरतें मिट गईं वे अब फिर दिखाई न देंगी। संसार ने उन्हें मिटा तो दिया पर उन्हें वह फिर पैदा नहीं कर सका। मोमिन, उलवी, सहबाई और ममनूँ की मृत्यु के बाद कोई विचार-शील पुरुष कविता का नाम न लेगा। दाग़ और मजरूह इस समय ग़नीमत हैं। कविता की वाटिका की ये बची खुची बुलबुलें हैं। काव्य-रसिको, इनके मधुर तरानों को सुन लो। फिर ऐसे तराने भी सुनने नसीब न होंगे।

हाली, यह शोकसभा नहीं है—कवि-सभा है। यहाँ रो-रोकर दूसरों को रुलाना उचित नहीं।

नं० २६. रंजिशो इल्तफ़ातो नाज़ो नियाज़।
हमने देखे बहुत नशेबो फ़राज़ ॥ १ ॥
शैख़! अल्लारे तेरी अय्यारी।
किस तवज्जे से पढ़ रहा है नमाज़ ॥ २ ॥

इक पते की जो हमने कह दी आज।
रङ्ग वाइज़ का कर गया परवाज़ ॥ ३ ॥

सुख, दुःख, मिलन-विरह आदि हमने संसार के उतार-चढ़ाव ख़ूब देख लिये ॥ १ ॥

शैख़जी, आपके कपट का क्या कहना! धन्य हैं, आप कैसी एकाग्रता से नमाज़ पढ़ रहे हैं। श्रद्धेय पण्डित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी भी अपनी सुप्रसिद्ध संस्कृत-कविता "कथमहं नास्तिकः" में कुछ इसी तरह की बात कहते हैं—

हस्तं निधाय जगदीश पटान्तरेषु
प्रातस्त्वनेकविधमन्त्रजपच्छलेन।
कुर्वन्ति येऽन्यजनपीडनचिन्तनानि
तेभ्यो मदीयनमनानि लसन्तु दूरात् ॥ २ ॥

आज हमने एक बात पते की कह दी। उसे सुनकर उपदेशकजी के चेहरे का रङ्ग उड़ गया ॥ ३ ॥

नं० ३०. यह ग़म नहीं है वह जिसे कोई बटा सके।
ग़मख़्वारी अपनी रहने दे ऐ ग़मगुसार बस ॥ १ ॥
दें ग़ैर दुश्मनी का हमारी ख़याल छोड़।
यां दुश्मनी के वास्ते काफ़ी हैं यार बस ॥ २ ॥
थोड़ी है रात और कहानी बहुत बड़ी।
हाली निकल सकेंगे न दिल के ग़ुबार बस ॥ ३ ॥

मेरा दुःख वह नहीं है जिसे कोई बटा सके इसलिए शुभचिन्तक महाशय, आप अपनी सान्त्वना-सूचक बातों को रहने ही दीजिए। १ ॥

गैर—दूसरे—अन्य लोग—हमारी शत्रुता का ध्यान छोड़ दें। उन्हें कष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। मेरे मित्र ही मेरे काफ़ी दुश्मन हैं। शत्रु लोग उनसे अच्छी शत्रुता कर भी नहीं सकते। इसी तरह का किसी कवि का—शायद कवि कौसर का—एक शेर हमें याद आ गया—

> दोस्तों से हमने वह सदमे उठाये जान पर।
> दिल से दुश्मन की अदावत का गिला जाता रहा॥ २॥

तू अपनी कहानी कहने बैठा तो है पर भाई छोटी सी रात में तेरी लम्बी कहानी ख़त्म न हो सकेगी—इसलिए यहीं बस कर॥ ३॥

नं० ३१.
> दर्द और दर्द की है सबके दवा एक ही शख़्स।
> याँ है जल्लाद व मसीहा ब ख़ुदा एक ही शख़्स॥ १॥
> क़ाफ़ले गुज़रें वहाँ क्योंकि सलामत वाइज़।
> हो जहाँ राहज़न और राहनुमा एक ही शख़्स॥ २॥
> जमघटे देखे हैं जिन लोगों के, इन आँखों ने।
> आज वैसा कोई दे हमको दिखा एक ही शख़्स॥ ३॥
> ऐतराज़ों का ज़माने के है हाली पै निचोड़।
> शाइर अब सारी ख़ुदाई में है क्या एक ही शख़्स॥ ४॥

सभी के दर्द की—सभी की पीड़ाओं की—एक आदमी ही दवा है। ईश्वर जानता है यहाँ घातक और रक्षक एक ही व्यक्ति है। महाकवि ग़ालिब इसी बात को किस अनोखे और दार्शनिक ढंग से कहते हैं—

मुहब्बत में नहीं है फ़र्क़ मरने और जीने का।
उसी को देखकर जीते हैं जिस काफ़िर पै दम निकले ॥१५॥

उस मार्ग के बटोहियों का ईश्वर ही रक्षक है जिस पर मार्ग-प्रदर्शक और लूटनेवाला एक ही व्यक्ति हो ॥ २ ।

हमने जिन लोगों के समूह के समूह देखे हैं आज वैसा हमें कोई एक आदमी तो दिखा दे ॥ ३ ॥

(उर्दू की) दुनिया के सभी समालोचक ग़रीब हाली पर टूट पड़े हैं क्या संसार में उसके सिवा और कोई कवि ही नहीं ? ॥ ४ ॥

नं० ३२. हक़ में अपनों के सख़्त मुमसिक हैं।
जो कि औरों के हक़ में हैं फ़य्याज़ ॥ १ ॥
वाज़ में गुल कतरते हैं वाइज़।
मुँह में उनके ज़ुबां है या मिक़राज़ ॥ २ ॥
ऐसी ग़ज़लें सुनी न थीं हाली।
यह निकाली कहां की तुमने ब्याज़ ॥ ३ ॥

जो लोग दूसरों के लिए उदारता दिखलाते हैं वे अपनों के लिए कंजूस होते हैं। उदारता घर ही से शुरू होनी चाहिए। क्योंकि—

Charity begins at home.

उपदेशकजी उपदेश करते समय ख़ूब फर्राटे लेते हैं। मालूम नहीं उनके मुँह में ज़ुबान है या कैंची ? ॥ २ ॥

हाली, हमने ऐसी (नैतिक) ग़ज़लें तो सुनी न थीं तुमने यह खाता कहाँ से निकाला है ? ॥ ३ ॥

नं० ३३. गुंचा चटका और आ पहुँची खिज़ाँ।
फ़स्ले गुल की थी फ़क़त इतनी बिसात ॥ १ ॥
तू भी खाने में नहीं मोहतात शैख़।
हम करें पीने में क्यों फिर एहतियात ॥ २ ॥
कूच की हाली करो तैयारियाँ।
है क़ुवा में दम बदम अब इनहतात ॥ ३ ॥

संसार में सुख क्षण भर ही रहता है। कली खिली ही थी कि पतझड़ हो गया। फूलों की बहार बस इतने में ही समाप्त हो गई ॥ १ ॥

शैख़जी, आप भी तो खाने में अहतियात नहीं करते फिर हम भी पीने में क्यों कसर करें? ॥ २ ॥

हाली, अब कूच की तय्यारी करो। शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग अब ढीले पड़ चले। इसी विषय पर कविवर दाग़ कहते हैं—

होशो हवासो ताबो तवाँ दाग़ जा चुके।
अब हम भी जानेवाले हैं सामान तो गया ॥ ३ ॥

नं० ३४. निकल आयेगी मैकशी की भी हिल्लत।
कोई मिल गया गर हमें यार वाइज़ ॥ १ ॥
हमें और भी तुझसे करते हैं बदज़न।
यह जुब्बा यह रेश और यह दस्तार वाइज़ ॥ २ ॥

उपदेशकजी, आप कहते हैं कि शराब पीना बुरा है किन्तु याद रखिए यदि हमें कोई उपदेशक शराबी मिल गया तो हम आपको शराब की आज्ञा भी शास्त्र में दिखा देंगे। ठहरे रहिए ॥ १ ॥

उपदेशकजी, आप उतने बुरे तो नहीं हैं जितने प्रायः उपदेशक होते हैं। पर आपकी नमाज़ का निशान लगी हुई पेशानी (ललाट), लम्बी दाढ़ी और बड़ी पगड़ी से हमें बड़ा डर लगता है। इन तीनों चीज़ों की आड़ में कपटासुर बड़ी मौज से छिपे रहते हैं॥ २॥

नं० ३५. हक़ न मुल्ला ने कुछ बताया साफ़।
और न सूफ़ी ने कुछ दिखाया साफ़॥ १॥
आँख अपनी ही जब तलक न खुली।
महरे-रोशन नज़र न आया साफ़॥ २॥
कभी दुश्मन से भी न खटके हम।
साफ़ थे आप, सबको पाया साफ़॥ ३॥
ज़ाहिदो, हम तो थे ही आलूदा।
तुमको भी हमने कुछ न पाया साफ़॥ ४॥

न पण्डितजी से ही परमार्थ का कोई विषय साफ़-साफ़ मालूम हुआ और न स्वामीजी से ही। न उन्होंने कोई मन लगती बात कही और न इन्होंने ही कुछ प्रत्यक्ष कर दिखाया॥ १॥

जब तक अपनी आँख बन्द रही तब तक हमें कुछ दिखाई न दिया। मध्याह्न का सूर्य्य भी उस समय हमारी आँखों में अन्धकार के सिवा और कुछ नहीं था। ठीक है—

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्॥२॥

भक्त लोगो, हम तो पापी थे ही पर आप भी हमें बिलकुल साफ़ नहीं दिखाई पड़ते॥ ३॥

नं० ३६. दिलों का खोट अगर कहिए बरमला एक एक।
तो आशना से हो बेगाना आश्ना एक एक ॥ १ ॥
रहा हूँ रिन्द भी ऐ शैख़ पारसा भी मैं।
मेरी निगाह में है रिन्दो पारसा एक एक ॥ २ ॥
छिपा के उससे क़सूर अपने—बहुत शर्माये।
जब आप मुँह से लगी बोलने ख़ता एक एक ॥ ३ ॥
वह इश्क़ है न जवानी वह तू है अब न वह हम।
पै दिल पै नक़्श है अब तक तेरी अदा एक एक ॥ ४ ॥
न हम रहेंगे न हाली पै दिल ख़राशो जहाँ।
रहेगी हालिये दिलगीर की सदा एक एक ॥ ५ ॥

यदि लोगों के दिलों की खोट को साफ़-साफ़ कह दो तो जितने मिलनेवाले हैं सभी शत्रु हो जायँ—सभी के दिल बिगड़ जायँ ॥ १ ॥

ऐ शैख़, मैं मद्योपासक और ईश्वरोपासक दोनों ही रहा हूँ। इसलिए ऐसा कोई मस्त और साधु नहीं है जिसे मैं न जानता हूँ ॥ २ ॥

हमने अपने अपराध उससे न कहे। कहते हुए शर्म मालूम हुई। पर न कहने पर भी हमें कुछ कम शर्माना न पड़ा। हमारे अपराध एक-एक करके स्वयं ही अपनी-अपनी दास्तान कहने लगे ! ॥ ३ ॥

वे दिन गये। न वह प्रेम है, न तू है, न मैं ही वह हूँ। पर यह मत समझना कि मैं तुझे भूल गया हूँ, तेरी एक-एक अदा अब तक मेरे हृदय पर लिखी हुई है ॥ ४ ॥

न हम होंगे न हाली होंगे। पर दुखी हाली की एक-एक उक्ति संसार में सदा रहेगी। बेशक ॥ ५ ॥

नं० ३७. जाँचते औरों को हैं ख़ुद ले के अपना इम्तहां।
रखते हैं अपना तरीके-इम्तहाँ सबसे अलग ॥ १ ॥
शाइरों के हैं सब अन्दाज़े सख़ुन देखे हुए।
दर्दमन्दों का है दुखड़ा और बयाँ सबसे अलग ॥ २ ॥
माल है नायाब पर गाहक हैं अक्सर बे ख़बर।
शहर में खोली है हाली ने दुकाँ सबसे अलग ॥ ३ ॥

हम अपनी परीक्षा से दूसरों को जाँचते हैं। हमारी परीक्षा करने की प्रणाली सबसे अलग है ॥ १ ॥

कवियों की वर्णन-शैली हमारी देखी हुई है किन्तु जिनके दिल में प्रेम का दर्द होता है उनका काव्य सबसे अलग होता है ॥ २ ॥

हाली ने अपने काव्य की दूकान सबसे अलग खोली है इसी लिए उसके अच्छे माल की भी गाहकों को अभी तक ख़बर नहीं है ॥ ३ ॥

नं० ३८. सोहबतें अहले वरा की सब गईं नज़रों से गिर।
बज़्मे रिन्दाँ में युँही इक रोज़ जा बैठे थे हम ॥ १ ॥
हम न थे आगाह वाइज़ ज़ुह्द ख़ूई से तेरी।
आदमी तुझको समझकर पास आ बैठे थे हम ॥ २ ॥
हमसे ख़ुद दुनिया ही पतियाई न हाली वर्ना याँ।
दीन तक दुनिया की क़ीमत में लगा बैठे थे हम ॥ ३ ॥

एक दिन योंही हम मस्तों में जा बैठे थे। वहाँ थोड़ी देर बैठने से ही भक्तों के सत्सङ्ग आँखों से गिर गये—निस्सार मालूम होने लगे॥ १ ॥

भक्तजी, हमें आपकी भोंड़ी तबीयत का हाल मालूम न था। हम तो आपको आदमी समझकर पास आ बैठे थे! ॥२॥

हाली, बहुत अच्छा हुआ। मजबूरी से ईमान बच गया। दुनिया ने हमें ख़ुद ही मुँह न लगाया नहीं हम तो उसके लिए ईमान तक दे देने को तय्यार बैठे थे॥ ३ ॥

नं० ३६. यारों को तुझसे हाली अब सर गरानियाँ हैं।
नींदें उचाट देती तेरी कहानियाँ हैं॥ १ ॥
याद उसकी दिल से धो दे ऐ चश्मेतर तो मानूँ।
अब देखनी मुझे भी तेरी रवानियाँ हैं॥ २ ॥
ग़ीबत हो या हज़ूरी दोनों बुरी हैं तेरी।
जब बदगुमानियाँ थीं अब बदज़ुबानियाँ हैं॥ ३ ॥
कहते हैं जिसको जन्नत वह इक झलक है तेरी।
सब वाइज़ों की बाक़ी रंगी बयानियाँ हैं॥ ४ ॥
अपनी नज़र में भी याँ अब तो हकीर हैं हम।
बे ग़ैरती की यारो अब ज़िन्दगानियाँ हैं॥ ५ ॥
खेतों को दे लो पानी अब बह रही है गंगा।
कुछ कर लो नौजवानो उठती जवानियाँ हैं॥ ६ ॥
फ़ज़ले हुनर बड़ों के गर तुममें हों तो जानें।
गर यह नहीं तो बाबा वह सब कहानियाँ हैं॥ ७ ॥

हाली, तेरी कहानियाँ सुनते-सुनते अब नींदें उचटी जाती हैं। तेरे मित्र भी तुझसे अब दुखी हो चले हैं॥ १ ॥

आँसू बहानेवाली आँख, मेरे दिल से यदि यार की याद को धो दे तो मैं तुझे मानूँ। देखूँ तो सही तुझमें कैसे प्रवाह भरे हुए हैं॥ २॥

तेरे पास रहना और तुझसे दूर रहना दोनों ही बुरे हैं। दूर रहने में बदगुमानियाँ रहती हैं और पास रहने में बद-ज़बानियों का मज़ा चखना पड़ता है। है दोनों तरह से मुश्किल ही॥ ३॥

जिसे लोग स्वर्ग कहते हैं वह मेरे यार की एक झलक है बाकी तो सब उपदेशक महाशय का ललित वर्णन ही है। महाकवि ग़ालिब इससे भी बढ़कर कहते हैं—

हमको मालूम है जन्नत की हक़ीक़त लेकिन।
दिल के ख़ुश रखने को ग़ालिब यह ख़याल अच्छा है॥ ४॥

दूसरे हमें कुछ ही समझें, कुछ हानि नहीं किन्तु अब तो हम स्वयं अपनी आँखों में गिर जाते हैं यह बड़े दुःख की बात है। ऐसी लज्जा भरी ज़िन्दगी किसी काम की नहीं॥५॥

देश के नवयुवको, अब अपने-अपने खेतों को पानी दे लो। गङ्गा बही जा रही है। उठती जवानियों में कुछ कर लो, इस अमूल्य और फिर कभी न आनेवाले समय को व्यर्थ मत गँवाओ॥ ६॥

बड़ों की बड़ी बातें करके अपने को बड़ा प्रमाणित मत करो। उनके गुण भी यदि तुममें हैं तो तुम निस्सन्देह बड़े हो और नहीं तो तुम्हारी बातें कोरी कहानियाँ हैं॥ ७॥

नं० ४०. ख़्वाबे राहत में वह लज़्ज़त तेरी ऐ पीरी नहीं।
जो जवानी में मज़ा देती थीं शब बेदारियाँ ॥ १ ॥
हैं अगरचे बेदर्दियाँ अपनों की दिल को नागवार।
नागवार उनसे सिवा ग़ैरों की हैं ग़मख़्वारियाँ ॥ २ ॥
ज़ीस्त बे अक़्लों को हो जाये बसर करनी मुहाल।
इतनी भी ऐ आक़िलो, अच्छी नहीं हुशियारियाँ ॥ ३ ॥
बे मज़ा है अहले दीं की तुर्शरूई भी मगर।
उससे फीकी अहले दुनिया की हैं ज़ाहिरदारियाँ ॥ ४ ॥

बुढ़ापे की सुख की नींद में भी वह आनन्द कहाँ है जो जवानी की रातों के जागरण में था। उस समय का विरह-जन्य दुःख आजकल के नाम-मात्र के सुख से अच्छा था ॥१॥

दुःख के समय में अपनों की सख़्तियाँ जितनी बुरी मालूम होती हैं उनसे कहीं ज़्यादा ग़ैरों की झूठी सहानुभूति बुरी मालूम होती है ॥ २ ॥

बुद्धिमानो, इतनी हुशियारी से काम मत लो कि मूर्खों को अपना जीवन काटना मुश्किल हो जाय। कुछ उनका भी ध्यान रक्खो ॥ ३ ॥

परमार्थ-प्रिय लोग ज़रूर रूखे होते हैं, वे अपने सामने किसी को बदते ही नहीं किन्तु उनके रूखेपन के सामने सांसारिक पुरुषों की ज़ाहिरदारियाँ (दिखावट) और भी फीकी हैं। उनकी दिखावट से तो धार्मिकों की रुखाई ही अच्छी ॥ ४ ॥

नं०. ४१ कम से कम वाज़ में इतना तो असर हो वाइज़।
बोल क़व्वाल के जो दिल पै असर करते हैं ॥ १ ॥

ऐब यह है कि करो ऐब हुनर दिखलाओ।
वर्ना याँ ऐब तो सब फ़र्दे बशर करते हैं॥ २ ॥

उपदेशकजी, आपके उपदेश में इतना असर तो होना चाहिए जितना कि लावनीवालों के गाने में होता है ॥ १ ॥

संसार में कोई निर्दोष नहीं किन्तु जो लोग ऐब करते हैं पर उन्हें गुण करके दिखाते हैं वे निस्सन्देह शठ हैं ॥ २ ॥

नं० ४२. शहर में उनके नहीं जिन्से वफ़ा की बिकरी।
भाव हैं पूछते फिरते पै ख़रीदार नहीं ॥ १ ॥
नित नया ज़ायक़ा चखने का है लपका उनको।
दर बदर झांकते फिरने से उन्हें आर नहीं ॥ २ ॥
दाव-ये इश्क़ो मुहब्बत पै न जाना उनके।
उनमें गुफ़्तार ही गुफ़्तार है किरदार नहीं ॥ ३ ॥

वफ़ा की उनके शहर में बिक्री नहीं। वहाँ भाव तो सब पूछते हैं पर ख़रीदारी का नाम कोई नहीं लेता ॥ १ ॥

हर एक आदमी प्रेमिक बना हुआ है। जहाँ अच्छी सूरत देखी और प्रेम की फुङ्कारें भरने लगे। ऐसे लोग नित नये स्वाद चाखने के लिए दर बदर टक्करें मारते फिरते हैं। महाकवि ग़ालिब भी ऐसे क्षुद्र पुरुषों की अपनी भावपूर्ण भाषा में शिकायत करते हैं—

हर बुल-हविस ने हुस्न परस्ती किया शआर।
अब आबरूये शेव-ये अहले नज़र गई ॥ २ ॥

ऐसे लोगों के प्रेम-प्रणों पर मत जाओ। वे सभी से प्रेम करते फिरते हैं अतएव उनमें बातों के सिवा और कुछ नहीं ॥३॥

नं० ४३. बादे सबा गई फूँक—क्या जाने कान में क्या।
फूले नहीं समाते गुंचे जो पैरहन में॥ १ ॥
गो रो चुके हैं दुखड़ा सौ बार क़ौम का हम।
पर ताज़गी वही है इस क़िस्स-ये कुहन में॥ २ ॥

बाग़ में कलियाँ फूली नहीं समातीं, खिली ही जाती हैं। मलयमारुत न मालूम उनके कान में क्या फूँक गई है॥ १ ॥

यद्यपि हज़ारों बार हम जाति का दुखड़ा रो चुके हैं किन्तु आज भी उस पुराने क़िस्से में वही ताज़गी है—वही अनोखापन है॥ २ ॥

नं० ४४. ज़बां तक़रीर से क़ासिर क़लम तहरीर से आजिज़।
न पूछो हमसे क्या देखा है हमने बज़्मेरिन्दां में॥ १ ॥
न दी हैरत ने हाली फ़ुरसते सैरे जहां इकदम।
रहे हम शहर में ऐसे कि थे गोया बयाबां में॥ २ ॥

हमने मस्तों की सभा में क्या देखा है—न पूछिए। उसका वर्णन करने के लिए न हमारी ज़बान तैयार है और न क़लम। सच यह है कि यह दोनों ही उसे बताने के लिए नितान्त असमर्थ हैं॥ १ ॥

आश्चर्य ने हमें संसाररूप वाटिका की सैर की फ़ुरसत न दी। हम इस संसार में इस तरह रहे जिस तरह कोई शहर में रहता हुआ जंगल में रहता हो॥ २ ॥

नं० ४५. रंज क्या क्या हैं एक जान के साथ।
ज़िन्दगी मौत है हयात नहीं॥ १ ॥
कोई दिल सोज़ हो तो कीजे बयां।
सरसरी दिल की वारदात नहीं॥ २ ॥

अकेली जान के साथ अनेक रंज हैं। ज़िन्दगी क्या है मौत है॥ १॥

कोई सहृदय हो तो दिल का हाल सुनायें। दिल की बातें साधारण नहीं हैं जो हर किसी को सुना दी जायँ। यह सरसरी वारदात या साधारण घटना नहीं है॥ २॥

नं० ४६. हर इक को नहीं मिलती याँ भीक ज़ाहिद।
बहुत जाँच लेते हैं देते हैं तब कुछ॥ १॥
तुम अपनी सी कहनी थी जो कह चुके सब।
नहीं नासहा हम पै इल्ज़ाम अब कुछ॥ २॥
यह है मीरे मजलिस कि चीनी की मूरत।
टटोलो तो हेच और जो देखो तो सब कुछ॥ ३॥

साधु महाशय, यहाँ सबको भीख नहीं मिलती है। पहले ख़ूब जाँच कर लेते हैं तब कहीं कुछ देते हैं। अतएव सावधान!॥ १॥

उपदेशकजी, आप अपनी सी सब कह चुके। मैंने आपकी बात नहीं मानी। दोष है तो मेरा है। आपका इसमें कोई अपराध नहीं॥ २॥

यह सभापति महाशय कोई ज़िन्दा आदमी हैं या चीनी की मूर्तिमात्र हैं। इन्हें टटोलो तो कुछ नहीं और देखने में सब कुछ मालूम होते हैं। विद्या आदि सद्गुणों को न देखकर जहाँ धन के कारण लोगों को अकारण बड़ा आदमी समझकर सभापति बना देते हैं वहाँ हाली का यह शेर बहुत ठीक फबता है॥ ६॥

नं० ४७. बढ़ाओ न आपस में मिल्लत ज़ियादा।
मुबादा कि हो जाय नफ़रत ज़ियादा ॥ १ ॥
तकल्लुफ़ अलामत है बेगानगी की।
न डालो तकल्लुफ़ की आदत ज़ियादा ॥ २ ॥
करो दोस्तो पहले आप अपनी इज़्ज़त।
जो चाहो करें लोग इज़्ज़त ज़ियादा ॥ ३ ॥
निकालो न रखने नसब में किसी के।
नहीं इससे कोई रज़ालत ज़ियादा ॥ ४ ॥
करो इल्म से इकतसाबे शराफ़त।
नजाबत से है यह शराफ़त ज़ियादा ॥ ५ ॥
फ़राग़त से दुनिया में दमभर न बैठो।
अगर चाहते हो फ़राग़त ज़ियादा ॥ ६ ॥
जहाँ राम होता है मीठी ज़बाँ से।
नहीं लगती कुछ इसमें दौलत ज़ियादा ॥ ७ ॥
मुसीबत का इक इक से अहवाल कहना।
मुसीबत से है यह मुसीबत ज़ियादा ॥ ८ ॥
करो ज़िक्र कम अपनी दादो दहिश का।
मुबादा कि साबित हो ख़िस्सत ज़ियादा ॥ ९ ॥
फिर औरों की तकते फिरोगे सख़ावत।
बढ़ाओ न हद से सख़ावत ज़ियादा ॥ १० ॥
कहीं दोस्त तुमसे न हो जायँ बदज़न।
जताओ न अपनी मुहब्बत ज़ियादा ॥ ११ ॥
जो चाहो फ़क़ीरी में इज़्ज़त से रहना।
न रक्खो अमीरों से मिल्लत ज़ियादा ॥ १२ ॥
वह इफ़लास अपना छिपाते हैं गोया।
जो दौलत से करते हैं नफ़रत ज़ियादा ॥ १३ ॥

है उल्फ़त भी वहशत भी दुनिया से लाज़िम ।
पै उल्फ़त ज़ियादा न वहशत ज़ियादा ॥ १४ ॥
फ़रिश्ते से बेहतर है इन्सान बनना,
मगर इसमें पड़ती है मेहनत ज़ियादा ॥ १५ ॥
बिके मुफ़्त यों हम ज़माने के हाथों ।
पै देखा तो थी यह भी क़ीमत ज़ियादा ॥ १६ ॥
हुई उम्र दुनिया के धन्दों में आख़िर ।
नहीं बस अब ऐ अक़्ल ! मोहलत ज़ियादा ॥ १७ ॥
ग़ज़ल में वह रंगत नहीं तेरी हाली ।
अलापें न बस आप धुरपत ज़ियादा ॥ १८ ॥

आपस में बहुत मेल मत बढ़ाओ, कहीं एक साथ फिर घृणा न हो जाय । एकरस रहना अच्छा है । बहुत बढ़कर गिरना अच्छा नहीं ॥ १ ॥

सङ्कोच ग़ैरियत (अनात्मीयता) की निशानी है इसलिए सङ्कोच (तकल्लुफ़) की आदत मत डालो ॥ २ ॥

पहले तुम्हें अपनी प्रतिष्ठा आप करनी चाहिए । अपनी दृष्टि में तभी प्रतिष्ठा होगी जब कि तुममें कोई भी गिरी हुई बात न हो । फिर तुम देखोगे कि सब तुम्हारी प्रतिष्ठा करते हैं ॥ ३ ॥

किसी की जाति में, कुटुम्ब में दोष मत निकालो इससे बढ़कर नीचता संसार भर में और कोई नहीं है ॥ ४ ॥

अपनी विद्या से तुम शराफ़त की वृद्धि करो । अपने को बड़ा समझते रहने से इस तरह विद्या द्वारा प्राप्त शराफ़त कहाँ अच्छी है ॥ ५ ॥

यदि चाहते हो संसार में आराम से रहें तो दम भर के लिए भी ख़ाली मत बैठो ॥ ६ ॥

संसार मीठी बात को सुनकर प्रसन्न होता है। इसमें ऐसा कोई बड़ा ख़र्च भी नहीं है। मतलब यह कि संसार को प्रसन्न रखने का इतना सस्ता नुसख़ा और दूसरा नहीं है ॥ ७ ॥

अपनी विपत्ति का सबसे हाल कहते फिरना भी स्वयं एक भारी विपत्ति है। विपत्ति का बोझा वहन करनेवालों को इस अपनी बनाई विपत्ति से तो बचना चाहिए ॥ ८ ॥

अपनी दानशीलता का ज़िक्र जहाँ तक बने कम करो। नहीं तो लोग तुम्हें गर्वी समझेंगे ॥ ९ ॥

उदारता को सीमा से अधिक मत बढ़ाओ। नहीं फिर दूसरों की उदारता का तुम्हें आश्रय लेना पड़ेगा ॥ १० ॥

अपने मित्रों पर अपना प्रेम मत जताओ। ऐसा करने से तुम्हारे मित्र तुम्हारी मित्रता पर सन्देह करने लगेंगे। वे तुम्हें झूठा समझने लगेंगे। तुम्हारे कामों से ही उन्हें तुम्हारी मित्रता का पता लगना चाहिए, तुम्हारी ज़बान से नहीं ॥ ११ ॥

यदि तुम चाहते हो कि फ़क़ीरी में तुम्हारी प्रतिष्ठा हो तो अमीरों से मिल्लत मत रखना। अमीरों का मेल तुम्हारी प्रतिष्ठा को बढ़ाने का कारण न होगा, घटाने का ही होगा ॥ १२ ॥

जो लोग धन से घिन करते हैं वे मालदार हैं ऐसा मत समझो। वे तो इस ढङ्ग से अपनी ग़रीबी छिपाते हैं। उनकी बातों पर मत जाओ ॥ १३ ॥

संसार एक ऐसी चीज़ है कि इससे राग और विराग दोनों ही करने चाहिए किन्तु न इससे विशेष राग की ज़रूरत है और न अधिक वैराग्य की ही। ज़रूरत दोनों की है पर अधिकता किसी की भी अच्छी नहीं ॥ १४ ॥

देवता से मनुष्य बनना अच्छा है किन्तु ऐसा करने में मेहनत ज़्यादा पड़ती है। मतलब यह कि यदि मनुष्य सर्व-गुण-सम्पन्न हो तो उसके सामने देवता कुछ नहीं ॥ १५ ॥

संसार के हाथ यद्यपि हम मुफ़्त में बिक गये हैं किन्तु अब विचार कर देखते हैं तो यह क़ीमत भी (मुफ़्त में बिकना भी) ख़ूब ज़्यादा थी ॥ १६ ॥

संसार के धन्धों में ही उम्र समाप्त हो गई। ऐ बुद्धि, अन चेत अब ज़्यादा अवकाश नहीं है। महाकवि मीर भी कहते हैं—

हुए बाल ग़फ़लत में सर के सफ़ेद।
उठो मीर जागो सहर हो गई ॥ १७ ॥

ऐ हाली, तुम्हारी ग़ज़ल में कुछ भी रङ्गत नहीं। अब आप अपनी धुरपत (ध्रुवपद) और ज़्यादा न अलापिए। क्षमा कीजिए, बहुत सुन ली! ॥ १८ ॥

नं० ४८. हक़ीक़त महरमे असरार से पूछ।
मज़ा अंगूर का मैख़्वार से पूछ ॥ १ ॥
हमारी आहे बे तासीर का हाल।
कुछ अपने दिल से कुछ अग़ियार से पूछ ॥ २ ॥
दिले महजूर से सुन लज़्ज़ते वस्ल।
निशाते आफ़ियत बीमार से पूछ ॥ ३ ॥

फ़रेबे वायद-ये दिलदार की क़द्र ।
शहीदे खंजरे इंकार से पूछ ॥ ४ ॥
तसव्वुर में किया करते हैं जो हम ।
वह तस्वीरे ख़याले यार से पूछ ॥ ५ ॥
मता ये बे बहा है शेरे हाली ।
मेरी क़ीमत मेरी गुफ़्तार से पूछ ॥ ६ ॥

जो रहस्यज्ञ हैं, जिन्हें सब बातों की ख़बर है उनसे ही तत्त्व की बात पूछनी चाहिए, अंगूर का मज़ा अंगूरी शराब पीनेवाले किसी मद्यप से पूछना चाहिए। उसके विषय में सम्मति देने का केवल उन्हें ही अधिकार है ॥ १ ॥

हमारी हाय तोबा निस्सन्देह प्रभावहीन है किन्तु फिर भी उसके प्रभाव का हाल अपने और प्रतिद्वन्द्वी के दिल से पूछ। उसके प्रभाव का हाल इन्हीं दो दिलों को मालूम हो सकता है ॥ २ ॥

जिस दिल ने कष्ट उठाये हैं उसी से मिलन के आनन्द की बात पूछनी चाहिए। जिस बीमार ने अनेक कष्ट उठाकर आरोग्य प्राप्त किया है वही आरोग्य के प्रसाद का ठीक-ठीक अनुभव करता है ॥ ३ ॥

मित्र के झूठे वायदे की क़द्र निषेध-रूप तलवार से घायल पुरुष से पूछ। 'ना' 'ना' सुनते-सुनते उसका दिल निस्सन्देह छलनी हो जाता है अतएव वही उसकी ठीक-ठीक क़द्र जानता है ॥ ४ ॥

मित्र के ध्यान में हम क्या किया करते हैं यह बात मित्र के उस काल्पनिक चित्र से पूछनी चाहिए, जिसे हम अपने मन में स्थान देकर और सब कुछ भूल जाते हैं ॥ ५ ॥

ऐ हाली, कविता सबसे बड़ी सम्पत्ति है। उसका मूल्य तो कोई मेरे ही दिल से पूछे—मेरे ही काव्य से पूछे ॥ ६ ॥

नं० ४१. है उनकी दोस्ती पर हमको तो बदगुमानी।
वह हमको दोस्त समझें यह उनकी मेहरबानी ॥ १ ॥
बेजुर्म कोई आख़िर कब तक सुने मलामत।
नासह से हमको अपनी कहनी पड़ी कहानी ॥ २ ॥
आशिक़ के दिल को ठंडक जो तेरी आग में है।
देता नहीं वह लज़्ज़त प्यासे को सर्द पानी ॥ ३ ॥
देखा जमाले जानां आंखों ने और न दिल ने।
क्या जाने किस अदा से की उसने दिल सितानी ॥ ४ ॥

उन्हें हम अपना दोस्त नहीं समझते। हमें उन पर भारी सन्देह है। वे हमें मित्र समझते हैं, यह उनकी मिहरबानी है, कृपा है और क्या कहें ? ॥ १ ॥

उपदेशक महाशय अकारण हमारी निन्दा करते थे, अकारण हमें भला-बुरा कहते थे। इसलिए इच्छा न रखते हुए भी हमें अपनी कहानी उनसे कहनी पड़ी ॥ २ ॥

तेरे आसक्त पुरुष को तेरे प्रेम की आग में जो ठण्ढ मिलती है वह प्यासे को सर्द पानी पीकर भी नहीं मिलती ॥ ३ ॥

उसकी शोभा को, उसके सौन्दर्य को न दिल ने देखा और न आँखों ने किन्तु उसने न मालूम किस तरह हमारा दिल छीन लिया ॥ ४ ॥

नं० ४०. दर गुज़रे दवा से तो भरोसे पै दुआ के।
दर गुज़रें दुआ से भी दुआ है यह ख़ुदा से ॥ १ ॥
इक दर्द हो बस आठ पहर दिल में कि जिसको।
तख़फ़ीफ़ दवा से हो न तसकीन दुआ से ॥ २ ॥
जब वक़्त पड़े दीजिए दस्तक दरे दिल पर।
झुकिए फ़ुक़रा से न झपकिए उमरा से ॥ ३ ॥

प्रार्थना का भरोसा करके हमने दवा का भरोसा छोड़ दिया। अब ईश्वर से यह प्रार्थना है कि प्रार्थना का भरोसा और छुड़ा दे ॥ १ ॥

हम और कुछ नहीं चाहते, बस यही चाहते हैं कि उसके प्रेम का दर्द हर समय हमारे दिल में होता रहे। दवा से तो उसमें कमी न हो और दुआ (प्रार्थना) से शान्ति न हो! ॥ २ ॥

जब कभी तुम्हें किसी चीज़ की ज़रूरत हो दिल के द्वार को खटखटाओ। न तुम्हें फ़क़ीरों के सामने झुकने की ज़रूरत है और न अमीरों के सामने झेंपने की ॥ ३ ॥

नं० ४१. क़लक़ उन्हें नहीं गर दोस्तों से छुटने का।
तबीअत अपनी भी कुछ कुछ सँभलती जाती है ॥ १ ॥
न ख़ौफ़ मरने से जब था न अब है कुछ हाली।
कुछ इक झिचक थी सो वह भी निकलती जाती है ॥ २ ॥

उन्हें यदि मित्रों से छूटने का कलंक नहीं तो अपनी तबाअत भी पहले से बहुत कुछ सम्हल गई है ।। १ ।।

हाली को न पहले मरने से डर था और न अब है । एक तरह की झिचक ज़रूर थी सो वह भी अब निकलती जाती है ।। २ ।।

नं० ४२. बुराई है रिन्दों में भी शैख़ लेकिन् ।
कहाँ यह बुराई कहाँ वह बुराई ।। १ ।।
गुनाहों से बचने की सूरत नहीं जब ।
इबादत में क्यों जान नाहक़ खपाई ।। २ ।।
रुका हाथ जब बन गये पारसा तुम ।
नहीं पारसाई, यह है ना रसाई ।। ३ ।।
जो कहिए तो झूठी जो सुनिए तो सच्ची ।
ख़ुशामद भी हमने अजब चीज़ पाई ।। ४ ।।
हुई आके पीरी में क़दरे जवानी ।
समझ हमको आई पै ना वक़् आई ।। ५ ।।
जवानी में आशिक़ थे अब हम हैं नासह ।
जो वाँ दिल पै ली थी तो याँ मुँह की खाई ।। ६ ।।
क़यास आप पर सबको करते हो हाली ।
नहीं अब भी अच्छों से ख़ाली ख़ुदाई ।। ७ ।।

शैख़जी, बुराई मस्त लोगों में भी ज़रूर है । पर आपकी बुराई और उनकी बुराई में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ है । कहाँ वह शुद्ध और साफ़ बुराई और कहाँ आपकी भलाईनुमा भयानक बुराई ।। १ ।।

पापों से बचने का जब कोई मार्ग नहीं तो फिर उपासना में समय नष्ट करने से फ़ायदा ? ॥ २ ॥

जब इन्द्रियाँ शिथिल हो गईं तब तुम पारसा बन गये—सदाचारी बन गये। यह सदाचार नहीं है यह मजबूरी है। महाभारत में भी लिखा है—

धातुषु क्षीयमाणेषु कः प्रशान्तो न जायते ॥ ३ ॥

कहने में असत्य और सुनने में सच्ची मालूम होती है वह ख़ुशामद भी कैसी विलक्षण चीज़ है ॥ ४ ॥

बुढ़ापे में जवानी की क़द्र मालूम हुई। दुःख हमें इतना ही है कि समझ आई पर असमय आई ॥ ५ ॥

जवानी में हम भी प्रेमी थे पर अब बूढ़े हो जाने पर दूसरों को शिक्षा देने लगे हैं। पहले दिल पर खाई थी अब मुँह की खाते हैं। कैसा अनोखा भाव है और कितने मौज़ूँ शब्द हैं ॥ ६ ॥

हाली, आप अपनी तरह ही सबको बुरा समझते हो। भाई, संसार अब भी अच्छे आदमियों से ख़ाली नहीं है ॥ ७ ॥

नं० ४३. क़त-ये उम्मेद ने दिल कर दिया यकसू सद शुक्र।
शक्ल मुद्दत्त में यह अल्लाह ने दिखलाई है ॥ १ ॥
डर नहीं ग़ैर का जो कुछ है सो अपना डर है।
हमने जब खाई है अपने ही से ज़क खाई है ॥ २ ॥
नजर आती नहीं अब दिल में तमन्ना कोई।
बाद मुद्दत के तमन्ना मेरी बर आई है ॥ ३ ॥

आशा के तिरोहित हो जाने पर दिल की जो शक्तियाँ इधर-उधर बिखर रही थीं अब एकत्र हो गईं। ईश्वर ने

क्या किया जाय प्रेमपीड़ा को सहन करने की तो मन में शक्ति नहीं और 'उफ़' कहते ही मन का भेद खुला जाता है। बड़ी मुश्किल है ॥ २ ॥

हाली, जो काम का समय था वह तुम ग़लती से गँवा बैठे। अब क्या है उम्र भर बैठे-बैठे पश्चात्ताप करते रहिए ॥३॥

शैख़जी की तोबा दूध का सा उबाल है, ज़रा देर ठहरिए अभी उसका हाल मालूम हुआ जाता है ॥ ४ ॥

नं० ४६. जब ख़िज़ाँ हो गई आख़िर तो रहा बीमे ख़िज़ाँ।
जिनकी क़िस्मत में हो कुलफ़त उन्हें राहत कैसी ॥ १ ॥
जी का उल्फ़त को समझते थे हम इक बहलावा।
वह तो आफ़त थी हमारे लिए—उल्फ़त कैसी ? ॥ २ ॥
जीते जी रख न फ़राग़त की तवक़्क़ै नादाँ।
क़ैदे हस्ती में मेरी जान फ़राग़त कैसी ॥ ३ ॥
जो हक़ीक़त से हैं आगाह तेरी ऐ दुनिया।
वह नहीं जानते होती है मुसीबत कैसी ॥ ४ ॥
जानता है वही दिल पर है गुज़रती जिसके।
हम कहें किससे कि दरपेश है हालत कैसी ॥ ५ ॥
जबकि रहता नहीं क़ाबू में दिल अपने नासह।
वही भी काम नहीं करती—नसीहत कैसी ॥ ६ ॥

पतझड़ के बीत जाने पर उसका वहम बहुत दिनों तक रहा। जिनके भाग्य में कष्ट है उन्हें आराम कहाँ मिलता है ॥ १ ॥

हम समझते थे कि प्रेम मन के बहलाने की चीज़ है; किन्तु वह तो हमारे लिए आफ़त निकला ॥ २ ॥

मूर्ख, जब तक जीवित है, फ़ुरसत की आशा मत रख। जिस सत्तात्मक जगत् में तू क़ैद है उसमें अवकाश या सुख नाम को नहीं॥ ३॥

रे संसार, जो तेरी असलियत से परिचित हैं वे नहीं जानते किसे तकलीफ़ कहते हैं। त्रिताप के मूल तुझको अच्छी तरह समझकर फिर दु:खों का खटका नहीं रहता॥ ४॥

जिसके ऊपर पड़ती है वही विपत्ति को अच्छी तरह जानता है। हम किसी को अपनी विपत्ति का हाल सुनायें तो क्या सुनायें?॥ ५॥

उपदेशक महाशय, जब दिल अपने वश में नहीं रहता है उस समय आप जैसे साधारण मनुष्य की शिक्षा तो क्या ईश्वर की आज्ञा का भी प्रभाव नहीं पड़ता॥ ६॥

नं० ५७. ख़ुल्द में भी गर रही याद उसकी ज़ुल्फ़।
कम न हो शायद परेशानी मेरी॥ १॥
है लिबासे जिस्म तक मुझ पर गराँ।
दूर जा पहुँची है उरयानी मेरी॥ २॥

यदि उसका केशपाश हमें स्वर्ग में भी याद रहा तो वहाँ भी हमारी परेशानी कम न होगी। इस काली डायन से ईश्वर पीछा छुड़ाये॥ १॥

मेरी निर्बलता हद से बढ़ गई है। मुझे अपना जिस्म भी अब भार मालूम होता है। अब मेरा नंगापन बहुत दूर तक पहुँच गया है॥ २॥

नं० ४८. हमको जीना पड़ेगा फ़ुरक़त में।
वह अगर हिम्मत आज़माने लगे ॥ १ ॥
डर है मेरी ज़बान खुल जाये।
अब वह बातें बहुत बनाने लगे ॥ २ ॥
सख़्त मुश्किल है शेव-ये तसलीम।
हम भी आख़िर को जी चुराने लगे ॥ ३ ॥
जान बचती नज़र नहीं आती।
ग़ैर उलफ़त बहुत जताने लगे ॥ ४ ॥

विरह में हमें अपना जीवन अच्छा नहीं लगता पर यदि वे हमारी हिम्मत की परीक्षा लेने लगें तो हमें विरह में ज़रूर जीना पड़ेगा। अपनी सख़्त जानी का उन्हें प्रमाण देना पड़ेगा ॥ १ ॥

मुझे भी अपनी ज़बान खुल जाने का डर हो गया है क्योंकि वे अब बातें बहुत बनाने लगे हैं ॥ २ ॥

सेवाधर्म बहुत कठिन है। अन्ततो गत्वा हमसे भी यह काम न हो सका। उनकी आज्ञाओं का यथावत् पालन नहीं कर सके। महामना भर्तृहरि भी कहते हैं—

सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ॥ ३ ॥

अब हमें अपनी जान की ख़ैर नज़र नहीं आती—कुशल नहीं दिखाई पड़ती। हमारे प्रतिद्वन्द्वी हमसे बहुत प्रेम दिखाते हैं। इसका हमें बहुत भय है ॥ ४ ॥

नं० ४९. दोस्तों की भी न हो पर्वा जिसे।
बेनियाज़ी उसकी देखा चाहिए ॥ १ ॥

आ गये हैं आपके अन्दाज़ो नाज़।
कीजिए अग़माज़ जितना चाहिए ॥ २ ॥
शैख़ है इनकी निगह जादू भरी।
सोहबते रिन्दाँ से बचना चाहिए ॥ ३ ॥
लग गई चुप हालिये रंजूर को।
हाल उसका किससे पूछा चाहिए ॥ ४ ॥

जिसे अपने मित्रों की भी पर्वाह न हो उसकी बेपर्वाही देखना चाहिए कितनी बड़ी होगी। महाकवि ग़ालिब इसी ज़मीन में कितनी बढ़िया बात कहते हैं—

हो मुनहसिर मरने पै जिसकी उमेद।
ना उमेदी उसकी देखा चाहिए ॥ ४ ॥

आपके हाव-भाव मुझे पसन्द आ गये हैं अब आपको अख़्त्यार है जितना चाहे उतना नख़रा कीजिए। सभी सहने होंगे ॥२॥

शैख़जी, मस्तों की दृष्टि में जादू भरा होता है। वह आपकी तरह कोरी नहीं होती अतएव आप उनकी सङ्गति से बचे ही रहिए ॥ ३ ॥

दुखी हाली को चुप लग गई। उस ग़रीब का हाल अब पूछा जाय तो किससे पूछा जाय। इसी छन्द में हाली के काव्यगुरु ग़ालिब के भी २-३ शेर सुन लीजिए—

चाहने को तेरे क्या समझा था दिल।
बारे अब इससे भी पूछा चाहिए ॥ १ ॥
चाक मत कर जेब बे अय्यामे गुल।
कुछ उधर का भी इशारा चाहिए ॥ २ ॥

दोस्ती का पर्दा है बेगानगी।
मुँह छिपाना हमसे छोड़ा चाहिए ॥ ३ ॥*

नं० ६०. दमे गिरिया किसका तसव्वुर है दिल में।
कि अश्क अश्क दरिया हुआ चाहता है ॥ १ ॥
खत आने लगे शिकवा आमेज़ उनके।
मिलाप उनसे गोया हुआ चाहता है ॥ २ ॥
बहुत काम लेने थे जिस दिल से हमको।
वह सर्फ़े तमन्ना हुआ चाहता है ॥ ३ ॥
अभी लेने पाये नहीं दम जहां में।
अजल का तक़ाज़ा हुआ चाहता है ॥ ४ ॥
वफ़ा शर्ते उल्फ़त है लेकिन् कहाँ तक ?
दिल अपना भी तुझसा हुआ चाहता है ॥ ५ ॥
ग़मे रश्क को तल्ख़ समझे थे हमदम।
सो वह भी गवारा हुआ चाहता है ॥ ६ ॥
बहुत चैन से दिन गुज़रते हैं हाली।
कोई फ़ितना बरपा हुआ चाहता है ॥ ७ ॥

मुझे रोते समय किसका ध्यान है कि मेरे आँसू की एक-एक बूँद समुद्र बनने का उपक्रम कर रही है।

महाकवि ग़ालिब दार्शनिक दृष्टि से बूँद को समुद्र बनाते है—सुनिए—

* दोस्ती का बेगानगी पर्दा है। जिस तरह औरों से तू लज्जा नहीं करता उसी तरह मुझसे भी लज्जा मत कर। यदि पर्दा करेगा तो और लोग मेरे तेरे प्रेम का हाल जान जायँगे इसलिए तू बेपर्दा ही रह। वह बेपर्दगी ही दोस्ती पर पर्दा रूप से पड़ी रहेगी और कोई न जान सकेगा कि तू मुझे प्यारा है। कितना बारीक भाव है ॥ ३ ॥

दाना खि़रहमन है हमें क़तरा है दरिया हमको।
आये है जुज़ में नज़र कुल का तमाशा हमको ॥ १ ॥

अब उनके पत्रों में कुछ-कुछ शिकायत रहती है इससे मालूम होता है कि उनसे मिलाप होने का समय निकट आ गया है ॥ २ ॥

जिस दिल से हमें बहुत काम लेने थे वह अभिलाषाओं ही की भेंट हुआ जाता है ॥ ३ ॥

संसार में आकर अभी दम भी न लेने पाये थे कि मृत्यु अपना तक़ाज़ा करने लगी। कैसा "क्षणभङ्गुरत्व" है ॥ ४ ॥

प्रेम में साबित क़दम रहना ज़रूरी है किन्तु कहाँ तक? तू अपनी तरफ़ भी तो देख। तेरे क्रूर आचरणों को देखकर अब हमारा दिल भी तुझ जैसा हो हुआ चाहता है ॥ ५ ॥

हमारे मित्र डाह करना बुरा समझते थे किन्तु अब देखते हैं कि उनकी धारणा उसके विषय में वैसी नहीं है। डाह की डायन ने उन्हें भी अब घेर लिया है ॥ ६ ॥

हाली, आज-कल ख़ूब मौज से दिन गुज़र रहे हैं। हमें इस बात की बहुत फ़िक्र है। कोई न कोई विपत्ति आने ही वाली है ॥ ७ ॥

नं० ६१. न वाँ पुरसिश न यां ताबे सखुन है।
मुहब्बत है कि दिल में मौजे ज़न है ॥ १ ॥
बनावट से नहीं खा़ली कोई बात।
मगर हर बात में इक सादापन है ॥ २ ॥

बताऊँ तुमको हूँ किस बाग़ का फूल।
जहाँ हर गुल बजाये ख़ुद चमन है ॥ ३ ॥
भला हाली और उल्फ़त से हो ख़ाली।
यह सब तुम साहबों का हुस्ने ज़िन है ॥ ४ ॥
किया है उसने कहते हैं स.ख़ुन तर्क।
मगर हमको अभी इसमें स.ख़ुन है ॥ ५ ॥

न वहाँ कोई पूछता है और न यहाँ कहने की शक्ति है। मेरे दिल में यदि कोई चीज़ है तो वह सिर्फ़ प्रेम की धारा है ॥१॥

उनकी कोई बात बनावट से ख़ाली नहीं किन्तु उस बनावट में भी (धोखा देने के लिए) एक तरह का सादापन है ॥२॥

मैं तुम्हें क्या बताऊँ कि मैं किस बाग़ का फूल हूँ। मैं जिस बाग का फूल हूँ उसमें हर एक फूल स्वयं बाग़ है ॥ ३ ॥

यह आप लोगों ने क्या कहा कि हाली उल्फ़त से ख़ाली नहीं है यह सब आप लोगों की कृपा है ॥ ४ ॥

लोग कहते हैं हाली ने सख़ुन (काव्य) कहना छोड़ दिया किन्तु हमें उसमें सख़ुन (सन्देह) है। हमें उससे इस बात का भरोसा नहीं ॥ ५ ॥

नं० ६२.

मिलते ग़ैरों से हो मिलो लेकिन्।
हमसे बातें करो सफ़ाई की ॥ १ ॥
दिल रहा पायेबन्द उल्फ़ते दाम।
थी अवस आरज़ू रिहाई की ॥ २ ॥
दिल भी पहलू में हो तो याँ किससे।
रखिए उम्मेद दिल-रुबाई की ॥ ३ ॥

न मिला कोई ग़ारते ईमाँ।
रह गई शर्म पारसाई की ॥ ४ ॥

दूसरों से मिलते हो मिलो—इसमें हमें कुछ वक्तव्य नहीं किन्तु हमसे जो व्यवहार है वह साफ़ होना चाहिए ॥ १ ॥

हमारा मन सदा प्रेमपाश में बँधा रहा। हमारी मुक्ति की अभिलाषा बिलकुल फ़िज़ूल थी ॥ २ ॥

पहले तो हमारे पास दिल ही नहीं और यदि हो भी तो यहाँ दिल के लगने की किससे आशा की जाय? इससे तो बेदिल ही रहना अच्छा है। एक ही दुःख है कि दिल नहीं है ॥३॥

हमें कोई हमारे धर्म्म का नाशक ही न मिला। इसी लिए हमारे धर्म्म की रक्षा हो गई। इसमें हमारी कोई तारीफ़ नहीं। तारीफ़ है सिर्फ़—सुयोग की ॥ ४ ॥

नं० ६३. दिल से क़ासिद बना के वायद-ये वस्ल।
और खोया रहा सहा तूने ॥ १ ॥
जी में क्या है जो बख़्शवाया आज।
हाली अपना कहा सुना तूने ॥ २ ॥

पत्रवाहक, तूने अपनी तरफ़ से मिलन के वायदे का जो हाल कहा उससे हमें और भी अधिक कष्ट पहुँचा। तूने हमारी शान्ति के लिए ही कहा था किन्तु उससे हमारी अशान्ति और बढ़ गई ॥ १ ॥

हाली, आज अपना कहा-सुना क्यों क्षमा करा रहे हो। बतलाओ तो सही तुम्हारे दिल में क्या है? ॥ २ ॥

नं० ६४. वस्ले जानाँ मुहाल ठहराया।
क़त्ले आशिक़ रवा किया तूने ॥ १ ॥
हाली उट्ठा हिला के महफ़िल को।
आख़िर अपना कहा किया तूने ॥ २ ॥

ईश्वर, मित्र का मिलन तूने असम्भव और प्रेमी का क़त्ल तूने उचित ठहराया! वाह तेरा भी कैसा सुन्दर न्याय है ॥१॥

हाली, आख़िरकार महफ़िल को हिलाकर ही उठा। उसने अपना कहा पूरा कर दिखाया ॥ २ ॥

रुबाइयाँ

नं० १. कांटा है हर एक जिगर में अटका तेरा।
हल्क़ा है हर एक गोश में लटका तेरा ॥
माना नहीं जिसने तुझको—जाना है ज़रूर।
भटके हुए दिल में भी है खटका तेरा ॥ १ ॥ २०३

ईश्वर, तुझे सभी मानते हैं। कोई ऐसा दिल नहीं जिसमें तेरा काँटा न हो, कोई ऐसा कान नहीं जिसमें तेरा हल्क़ा न हो। बहुत से चाहे तुझे न मानें पर जानते ज़रूर हैं। चाहे उनके दिल भटके हुए हों पर उनमें तेरा खटका ज़रूर है ॥ १ ॥

नं० २. हस्ती से है तेरी रंगो बू सबके लिए।
ताइत में है तेरी आबरू सबके लिए ॥
हैं तेरे सिवा सारे सहारे कमज़ोर।
सब अपने लिए हैं और तू सबके लिए ॥ १ ॥

तेरी सत्ता से सबकी शोभा है, उसी के द्वारा सब शोभित
। तेरी अधीनता स्वीकार करने से सभी की प्रतिष्ठावृद्धि
ोती है। तेरे सिवा और जितने आश्रय हैं सभी कमज़ोर हैं—
ग्तएव टूट जाते हैं। संसार में जो कुछ है अपने लिए है
केन्तु तू सबके लिए है ॥ १ ॥

३. बुलबुल की चमन में हम ज़बानी छोड़ी।
बज़्मे शौरा में शेरख़्वानी छोड़ी॥
जब से दिले ज़िन्दा तूने हमको छोड़ा।
हमने भी तेरी रामकहानी छोड़ी॥ १ ॥

बाग़ में अब हम बुलबुल की प्रतिद्वन्द्विता नहीं करते और
कविसमाज में काव्य भी नहीं पढ़ते। ऐ दिल, जब से तूने
हमें छोड़ा तभी से हमने भी तेरी रामकहानी छोड़ दी॥ १ ॥

नं० ४. है इश्क़ तबीब दिल के बीमारों का।
या घर है वह ख़ुद हज़ार आज़ारों का॥
हम कुछ नहीं जानते पै इतनी है ख़बर।
इक मशग़ला दिलचस्प है बेकारों का॥ १ ॥

प्रेम दिल के बीमारों का चिकित्सक है या हज़ार बीमा-
रियों की ख़ुद एक बड़ी बीमारी है? इस बात का हमें कुछ हाल
मालूम नहीं। किन्तु हम इतना जानते हैं कि जिन्हें यहाँ कुछ
काम नहीं उनके लिए यह एक मनोरञ्जक काम है। इसमें लग
रहने से उनका समय अच्छी तरह कट जाता है॥ १ ॥

नं० ५. मुमकिन यह नहीं कि हो बशर ऐब से दूर।
पर ऐब से बचिए ताबमक़दूर ज़रूर॥

ऐब अपने घटाओ पै ख़बरदार रहो।
घटने से कहीं उनके न बढ़ जाये ग़रूर॥ १ ॥

मनुष्य में कोई दोष न हो यह बात सम्भव नहीं किन्तु अपने आपको जहाँ तक बने दोषों से बचाने की चेष्टा करनी चाहिए। दोषों को दूर करते समय सावधानता की आवश्यकता है। ऐसा न हो कि दोषों के कम होने के साथ अभिमान बढ़ने लगे। अपने को दोषहीन समझकर अभिमान करने लगो। नहीं तो एक साधारण रोग से छूटकर बड़े रोग के पंजे में फँस जाओगे। अतएव—सावधान॥ १॥

६. हैं जहल में सब आलिमो जाहिल हमसर।
आता नहीं फ़र्क़ इसके सिवा उनमें नज़र॥
आलिम को है इल्म अपनी नादानी का।
जाहिल को नहीं जहल की कुछ अपने ख़बर॥ १॥

मूर्खता में विद्वान् और अविद्वान् एक से हैं। उनमें सिर्फ़ यही अन्तर है कि विद्वान् तो अपनी मूर्खता को समझता रहता है और अविद्वान् को अपनी मूर्खता की कुछ भी ख़बर नहीं रहती अतएव वह दूर भी नहीं होती॥ १॥

नं० ७. है नफ़्स में इन्सां के जिबिल्ली यह मर्ज़।
हर सई पै होता है तलबगार एवज़॥
जो ख़ास ख़ुदा के लिए थे काम किये।
देखा तो निहां उनमें भी थी कोई ग़रज़॥ १॥

मनुष्य के स्वभाव में यह दोष है कि वह अपनी हर चेष्टा का प्रतिफल चाहता है—उसका पुरस्कार चाहता है। उसने

जो काम "ईश्वरार्पण" किये थे उनमें भी उसकी कोई न कोई वासना छिपी हुई थी ॥ १ ॥

नं० ८. दुनियाये दुनी को नक़्शे फ़ानी समझो ।
रूदादे—जहाँ को इक कहानी समझो ॥
पर जब करो आग़ाज़ कोई काम बड़ा ।
हर साँस को उम्रे जाविदानी समझो ॥ १ ॥

संसार को तुम ज़रूर क्षणभङ्गुर समझो । यहाँ के कामों को भी तुम कहानी समझो । किंतु जब कभी तुम किसी बड़े काम का अनुष्ठान करने लगो तब अपने हर साँस को सदा रहनेवाला या नित्य समझो । संस्कृत के इस श्लोक में भी यही भाव है, किंतु ज़रा से भेद के साथ—

अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थंश्च चिन्तयेत् ।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत् ॥ १ ॥

नं० ९. देखो जिस सलतनत की हालत दरहम ।
समझो कि वहाँ है कोई बरकत का क़दम ॥
या तो कोई बेगम है मुशीरे दौलत ।
या है कोई मौलवी वज़ीरे आज़म ॥ १ ॥

जिस राज्य की दशा बिगड़ी हुई हो समझ लो उसमें ज़रूर कुछ पवित्र पद पहुँच गये हैं । या तो कोई बेगम साहबा उसकी सञ्चालिका होंगी या कोई मौलवी साहब उसके महा-मन्त्री होंगे ! उसकी दुर्दशा के ये ही दो कारण हो सकते हैं ॥१॥

नं० १०. मूसा ने यह की अर्ज़ कि ऐ बार[illegible] ।
मक़बूल तेरा कौन है बन्दों में सिवा ॥

इरशाद हुआ बन्दा हमारा वह है।
जो ले सके और न ले बदी का बदला ॥ १ ॥

एक बार मूसा ने ईश्वर से पूछा कि आपको कौन मनुष्य अधिक प्यारा है? ईश्वर ने कहा—वह आदमी जो किसी की की हुई बदी का बदला ले तो सकता है पर लेता नहीं है ॥१॥

नं० ११. कुछ क़ौम की हमसे सोगवारी सुन लो।
कुछ चश्मे जहाँ में अपनी ख़्वारी सुन लो ॥
अफ़सान-ये कैसो कोहकुन याद नहीं।
चाहो तो कथा हमसे हमारी सुन लो ॥ १ ॥

हमसे जाति के अधःपतन का वृत्तान्त सुन लो, उसकी दुःखभरी कहानी सुन लो। हमें लैला मजनूँ का क़िस्सा याद नहीं; हाँ इच्छा हो तो हम अपनी कथा आपको सुना सकते हैं ॥ १ ॥

नं० १२. है जान के साथ काम इन्साँ के लिए।
बनती नहीं ज़िन्दगी में बे काम किये ॥
जीते हो तो कुछ कीजिए ज़िन्दों की तरह।
मुर्दों की तरह जिये तो क्या ख़ाक जिये ॥ १ ॥

जब तक मनुष्य ज़िन्दा है—उसे काम करना होगा। ज़िन्दगी में बे काम किये नहीं बनती। जीते हो तो ज़िन्दों की तरह काम भी करो। मुर्दों की तरह जीने से कुछ फ़ायदा नहीं ॥ १ ॥

नं० १३. मौजूद हुनर [illegible] आत में जिसकी हज़ार।
बदज़न न हो ऐब उसमें गर हों दो चार ॥

ताऊस के पाये ज़िश्त पर करके नज़र।
कर हुस्नो जमाल का न उसके इन्कार ॥ १ ॥

जिसमें अनेक गुण हों उसके किसी एक दोष के कारण उसे बुरा मत समझो। मोर के ख़राब पाँव को देखकर उसके सौन्दर्य्य का निषेध मत करो। ठीक है—

एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः ॥ १ ॥

नं० १४. मसरूफ़ जो यूँ वज़ीफ़ा ख़्वानी में हैं आप।
ख़ैर अपनी समझते बेज़बानी में हैं आप॥
बोलें कुछ मुँह से या न बोलें हज़रत।
मालूम है हमको जितने पानी में हैं आप ॥ १ ॥

मूर्ख महाशय, आप मन-मन में जप किये जाइए। अपनी मूर्खता को छिपाने का आपने अच्छा ढंग निकाला है। हम भी आपके इस ढंग को समझ गये हैं। आप चाहे बोलें या न बोलें पर हम ख़ूब जानते हैं कि आप कितने पानी में हैं ॥ १ ॥

नं० १५. मुमकिन् है कि हो जाय फ़रिश्ता इन्सां।
मुमकिन् है बदी का न रहे उसमें निशां॥
मुमकिन् तो है सब कुछ पै हक़ीक़त है यह।
इन्सां है अब तक वही क़रनुल-शैतां॥

मनुष्य का देवता बनना सम्भव है, उसमें बुराई न रहे— यह भी सम्भव है। ये सब बातें मुमकिन हैं इसमें कुछ

सन्देह नहीं किन्तु सच यह है कि मनुष्य है अभी तक शैतान का भाई ही ॥ १ ॥

नं० १६. ऐ वक्त बिगाड़ का है सब के चारा।
पर तुझसे बिगड़ने का नहीं है चारा ॥
हो जाय गर एक तू हमारा साथी।
फिर ग़म नहीं फिर जाय ज़माना सारा ॥ १ ॥

कालदेव, सबके बिगड़ने की दवा है पर आपके बिगड़ जाने पर कोई दवा काम नहीं देती। यदि आप हमारे साथी हो जायँ तो फिर चाहे संसार हमसे बिगड़ जाय हमें डर नहीं ॥ १ ॥

नं० १७. ग़ुस्से पै किसी के ग़ुस्सा आता है वहीं।
जब तक कि रहे वह अक़्लोदानिश के क़रीं ॥
आपे से जब अपने हो गया तू बाहर।
फिर किससे हों आज़ुर्दा कि तू तू ही नहीं ॥ १ ॥

किसी के क्रोध पर उसी समय क्रोध आता है जब तक कि वह बुद्धि और विचार के निकट रहे। जब कोई आदमी आपे से बाहर हो जाता है फिर उसके ग़ुस्से पर ग़ुस्सा होना वृथा है क्योंकि वह आदमी ही नहीं रहता ॥ १ ॥

नं० १८. यह सच है कि मांगना खता है न सवाब।
जेबा नहीं सायल पै मगर क़हरो इताब ॥
बदतर है हज़ार बार ऐ दूने हिम्मत।
सायल के सवाल से तेरा तल्ख़ जवाब ॥ १ ॥

माँगना बहुत बुरी बात है; किन्तु माँगनेवाले पर अत्याचार करना और भी बुरा है। तेरा कड़वा जवाब भिक्षुक के माँगने से कहीं बुरा है ॥ १ ॥

नं० १६. एहसान के है गर सिले की ख़्वाहिश तुमको।
तो इससे यह बेहतर है कि एहसाँ न करो ॥
करते हो गर एहसान तो कर दो उसे आम।
इतना कि जहाँ में कोई ममनून न हो ॥ १ ॥

यदि तुम प्रत्युपकार के लिए उपकार करते हो तो इससे यह अच्छा है कि तुम उपकार ही न करो। यदि उपकार करते हो तो उसे इतना आम (साधारण) कर दो कि किसी को भी तुम्हारा धन्यवाद करने का ध्यान न आये ॥ १ ॥

नं० २०. क़ानून हैं बेशतर यक़ीनन बेकार।
हाशा कि हो उनपै नज़्मे-आलम का मदार ॥
जो नेक हैं उनको नहीं हाजत इनकी।
और बद नहीं बनते नेक इनसे ज़िन्हार ॥ १ ॥

जितने प्रचलित क़ानून हैं प्रायः सभी बेकार हैं। जो भले आदमी हैं उन्हें क़ानून की ज़रूरत ही नहीं, वे आईन विरुद्ध कोई काम ही नहीं करते और जो बुरे हैं वे इन क़ानूनों की सहायता से भले नहीं बनते ॥ १ ॥

नं० २१. वाइज़ ने कहा कि वक़्त सब जाते हैं टल।
इक वक़्त से अपने नहीं टलती तू अजल! ॥

की अर्ज़ यह इक सेठ ने उठकर कि हज़ूर।
है टैक्स का वक्त भी इसी तरह अटल ॥ १ ॥

उपदेशकजी कह रहे थे कि संसार में सब कामों के समय टल जाते हैं किन्तु मृत्यु का समय नहीं टलता। वहाँ एक सेठजी भी बैठे थे। उन्होंने उठकर कहा कि महाशय, मौत की तरह टैक्स का समय भी अटल है ॥ १ ॥

नं० २२. जैसा नज़र आता हूँ न ऐसा हूँ मैं।
और जैसा समझता हूँ न वैसा हूँ मैं ॥
अपने से भी ऐब हूँ छिपाता अपने।
बस मुझको ही मालूम है जैसा हूँ मैं ॥ १ ॥

मुझे तुम जैसा देखते हो मैं वैसा नहीं हूँ। मैं ख़ुद अपने को जैसा समझता हूँ वैसा नहीं हूँ। मैं दूसरों से ही अपने ऐब छिपाता हूँ—यह बात नहीं अपने से भी छिपाता हूँ। सच यह है मैं जैसा हूँ—अच्छा या बुरा—यह बात मैं स्वयं ही जानता हूँ ॥ १ ॥

नं० २३. हो ऐब की ख़ू या कि हुनर की आदत।
मुश्किल से बदलती है बशर की आदत ॥
छुटते ही छुटेगा उस गली में जाना।
आदत और वह भी उम्र भर की आदत ॥ १ ॥

चाहे भलाई हो या बुराई जिसकी आदत पड़ जाती है मुश्किल से छूटती है। उस गली का जाना धीरे-धीरे ही छुटेगा। पहले तो आदत और फिर उम्र भर की आदत का छूटना साधारण बात नहीं है ॥ १ ॥

२४. मरने पै मेरे वह रोज़ो शब रोयेंगे।
जब याद करेंगे मुझे तब रोयेंगे॥
उल्फ़त पै वफ़ा पै जाँ निसारी पै मेरी।
आगे नहीं रोये थे तो अब रोयेंगे॥ १॥

उन्हें मेरी क़द्र मेरे बाद मालूम होगी। मेरी प्रीति, सचाई और मेरी सर्वोत्सर्गता पर वे रात दिन रोयेंगे। इतना रोयेंगे कि पहले कभी न रोये हों॥ १॥

दूसरा अध्याय

फुटकर कवितायें

कविता को संबोधन करके आप कहते हैं—

नं० १. ऐ शेर ! दिल फ़रेब न हो तू तो ग़म नहीं।
पर तुझ पै हैफ़ है जो न हो दिल गुदाज़ तू ॥ १ ॥
सनअत पै हो फ़रेफ़्ता आलम अगर तमाम।
हाँ सादगी से आइयो अपनी न बाज़ तू ॥ २ ॥
जौहर है रास्ती का अगर तेरी ज़ात में।
तहसीने रोज़गार से है बे नियाज़ तू ॥ ३ ॥
हुस्न अपना गर दिखा नहीं सकता जहान को।
आपे को देख और कर अपने पै नाज़ तू ॥ ४ ॥
तूने किया है बहरे हक़ीक़त को मौजे ख़ेज़।
धोखे का ग़र्क़ करके रहेगा जहाज़ तू ॥ ५ ॥
ऐ शेर ! राहे रास्त पै तू जब कि पड़ लिया।
अब राह के न देख नशेबो फ़राज़ तू ॥ ६ ॥
जो क़द्रदाँ हो अपना उसे मुग़तनम समझ।
हाली को तुझपै नाज़ है कर उसपै नाज़ तू ॥ ७ ॥

कविता देवि, यदि तू मनोरञ्जक न हो तो कोई ऐसे दुःख की बात नहीं किन्तु यदि तुझमें रस न हो, तो बहुत बुरी बात है। बनावट पर चाहे सारा संसार लट्टू हो जाय पर तू सादगी और सरलता को मत छोड़ना। तुझे अपने अन्दर सचाई पैदा करना चाहिए। इसका ध्यान न करना चाहिए कि

तुझसे कौन प्रसन्न और कौन अप्रसन्न है। संसार तेरे सौन्दर्य्य को न देखे तो कुछ पर्वा नहीं। तू अपने सौन्दर्य्य को आप देख और प्रसन्न हो। तेरे कारण सचाई का समुद्र लहरें मार रहा है। मालूम होती है तू धोखे के जहाज़ को बिना डुबाये नहीं मानेगी। जब तू सीधे रास्ते पर पड़ गई तब तुझे इधर-उधर के गड्ढों से क्या मतलब? जो तेरी क़द्र करे उसे ही तू ग़नीमत समझ। हाली तुझ पै गर्व करता है तू उस पर गर्व कर॥१—७॥

वृद्धावस्था में ग़ज़ल न लिखने का आप कैसा अच्छा और स्वाभाविक वर्णन करते हैं—

नं० ६. हुई रेहाने जवानी की बहार आख़िर हैफ़।
तबा रंगीं थी मये इश्क़ की जब मतवाली॥ १॥
अपनी रूदाद थी जो इश्क़ का करते थे बयां।
जो ग़ज़ल लिखते थे होती थी सरासर हाली॥ २॥
अब-कि उल्फ़त है न चाहत न जवानी न उमंग।
सर है सौदा से तिही इश्क़ से दिल है ख़ाली॥ ३॥
गर ग़ज़ल लिखिए तो क्या लिखिए ग़ज़ल में आख़िर।
न रही चीज़ वह मज़मून सुझानेवाली॥ ४॥
आप बीती न हो जो है वह कहानी बे लुत्फ़।
गचे हों लफ़्ज़ फ़सीह और ज़बाँ टकसाली॥ ५॥
हाँ मगर कीजिए कुछ इश्क़ का ग़ैरों के बयां।
लाइए बाग़ से औरों के लगाकर डाली॥ ६॥
खींचिए वस्ले सनम की कभी फ़र्ज़ी तसवीर।
कीजिए दर्दे जुदाई की कभी नक़्क़ाली॥ ७॥

ता कि भड़काये जवानों के दिल आतिश की तरह।
वह हवा जिससे हुआ है दिमाग़ अपना ख़ाली॥ ८॥
पर यह डर है कि कहीं अपनी भी वही हो न मसल।
"क़हबा चूँ पीर शवद पेशा कुनद दल्लाली"॥ ६॥

जवानी की बहार समाप्त हो गई। अब वे दिन हवा हुए जब कि हमारी रँगी हुई तबीयत प्रेम की शराब से मतवाली रहती थी। उस समय जो कुछ कहते थे वह अपने ही ऊपर बीती हुई प्रेम की कथा होती थी। जो ग़ज़ल होती थी सरासर अपने ही हाल से भरी हुई होती थी। पर अब वह समय बदल गया। अब न प्रेम है, न चाहत है, न जवानी है और न उमंग। अब सिर में न सौदा है और न मन में प्रीति। मन और सिर दोनों ही भाव-शून्य हैं। प्रेम की कहानी आप बीती हो तभी मज़ा देती है। नहीं तो चाहे शब्द कैसे ही भावपूर्ण हों और भाषा कैसी ही टकसाली हो—बेकार है। परन्तु दूसरों की प्रेम-कथा का वर्णन किया जा सकता है। औरों के बाग़ से डाली लगाकर लाई जा सकती है। कभी मित्र के मिलन का काल्पनिक चित्र खींचिए और कभी वियोग में होनेवाले दुःखों की नक़्ल उतारिए। ऐसा करने से भी नवयुवकों के हृदय में छिपी हुई प्रेम की आग—उस हवा से भड़क उठेगी जिससे हमारा अपना दिमाग़ रिक्त हो गया है। किन्तु हमें ऐसा करने में एक डर मालूम होता है और वह यह है कि कहीं हम पर भी लोग यह

फबती न कसने लगें कि—"वेश्या बूढ़ी होकर दलाली करने लगती है।"

समालोचना

नं० ३. बाप ने बेटे को समझाया कि इल्मो फ़ज़्ल में।
जिस तरह बन आये बेटा नाम पैदा कीजिए॥ १॥
कीजिए तसनीफ़ और तालीफ़ में सइये बलीग़।
इसमें एक अपना पसीना और लहू कर दीजिए॥ २॥
दीजिए मानी के नज़्मो नस्र में दरिया बहा।
और सखुन की दाद फिर पीरों जवाँ से लीजिए॥ ३॥
और न हो गर शेरो इंशा की लियाक़त आपमें।
शाइरों और मुंशियों पर नुक्ता-चीनी कीजिए॥ ४॥

किसी बाप ने बेटे से कहा—पुत्र, तुम विद्या और योग्यता को बढ़ाओ। मतलब यह कि जिस तरह हो नाम पैदा करो। अच्छी-अच्छी पुस्तकें बनाकर अपनी बुद्धि का सदुपयोग करो। इसमें अपने ख़ून और पसीने को एक कर दो। गद्य और पद्य के सुविशाल क्षेत्रों में भाव की नदियाँ बहा दो। इस तरह युवक और वृद्ध सभी से प्रशंसा प्राप्त करो। और यदि तुममें पुस्तकें लिखने की और कविता करने की लियाक़त न हो तो कवियों और लेखकों की समालोचना करने का काम धड़ाके से शुरू कर दो!

सेवकों पर सख्ती करने का परिणाम

एक आक़ा था हमेशा नौकरों पर सख़्तगीर।
दर गुज़र थी और न साथ उनके रिआयत थी कहीं ॥ १ ॥
बे सज़ा कोई ख़ता होती न थी उनकी मुआफ़।
काम से मोहलत कभी मिलती न थी उनके तईं ॥ २ ॥
हुस्ने ख़िदमत पर इज़ाफ़ा या सिला तो दूर किनार।
ज़िक्र क्या निकले जो फूटे मुँह से उसके आफ़रीं ॥ ३ ॥
पाते थे आक़ा को वह होते थे जब उससे दो चार।
नथने फूले, मुँह चढ़ा, माथे पै बल, अबरू पै चीं ॥ ४ ॥
थी न जुज़ तनख़्वाह नौकर के लिए कोई फ़तूह।
आके हो जाते थे ख़ाइन जो कि होते थे अमीं ॥ ५ ॥
रहता था इक इक शरायतनामा हर नौकर के पास।
फ़र्ज़ जिसमें नौकर और आक़ा के होते थे तईं ॥ ६॥
गर रिआयत का कभी होता था कोई ख़्वास्तगार।
जहर के पीता था घूँट आख़िर बजाये अंगबीं ॥ ७ ॥
हुक्म होता था शरायतनामा दिखलाओ हमें।
ताकि यह दर्ख़्वास्त देखें वाजिबी है या नहीं ॥ ८ ॥
वां सिवा तनख़्वाह के था जिसका आक़ा ज़िम्मेदार।
थीं करें जितनी वह सारी नौकरों के ज़िम्मे थीं ॥ ९ ॥
देखकर काग़ज़ को हो जाते थे नौकर ला जवाब।
थे मगर वे सब के सब आक़ा के मारे आस्तीं ॥१०॥
एक दिन आक़ा था इक मुँहज़ोर घोड़े पर सवार।
थक गये जब ज़ोर करते करते दस्ते नाज़नी ॥११॥
दफ़ातन क़ाबू से बाहर होके भागा राहवार।
और गिरा असवार सद्रे ज़ीं से बालाये ज़मीं ॥१२॥

की बहुत कोशिश न छूटी पाँव से लेकिन रकाब।
की नज़र साईस की जानिब कि हो आकर मुईं ॥१३॥
था मगर साईस ऐसा संगदिल और बे वफ़ा।
देखता था और टस से मस न होता था लईं ॥१४॥
दूर ही से था उसे काग़ज़ दिखाकर कह रहा।
देख लो सरकार इसमें शर्त यह लिक्खी नहीं ॥१५॥

एक स्वामी अपने सेवकों पर सदा कठोरता का व्यवहार किया करता था। उनके साथ वह कभी रिआयत नहीं करता था। वह उनके अपराध को कभी क्षमा न करता था। हमेशा उन्हें छोटे से छोटे अपराध के लिए दण्ड सहना पड़ता था। क्रूर स्वामी उन्हें सदा खदेड़ता रहता था। उनका कोई समय खाली न था। नौकर कैसा ही अच्छा काम करते थे पर उन्हें पुरस्कार तो क्या मालिक के मुँह से कोई अच्छा शब्द भी सुनने को नहीं मिलता था। नौकर जब मालिक को देखते उसके नथने फूले हुए, मुँह चढ़ा हुआ, माथे पर बल और भौंहे टेढ़ी पाते। उसके यहाँ से उन्हें वेतन के सिवा और कुछ न मिलता था। मिलना तो एक तरफ़ बेचारे डर के मारे काँपते रहते थे। हर एक नौकर के पास एक काग़ज़ रहता था जिसमें स्वामी और सेवक के कर्त्तव्य लिखे रहते थे। नौकरों में से यदि कोई कुछ रिआयत चाहता तो वह उसी काग़ज़ को तलब करता था। उसमें तनख्वाह देने के सिवा मालिक का और कोई कर्त्तव्य नहीं लिखा हुआ था। अतएव बेचारे नौकरों को मुँह की खानी पड़ती थी। इन

कारणों से सभी नौकर उसके शत्रु बन गये थे। एक दिन मालिक किसी मुँहज़ोर घोड़े पर सवार हुआ। घोड़ा उसे लेकर उड़ चला। मालिक ने अपने कमज़ोर हाथों से उसे बहुत रोकना चाहा किन्तु वह न रुका। अन्त में वह ज़ोर से ज़मीन पर आ रहा। उसने रकाब में से पाँव निकालने की बहुत चेष्टा की किन्तु पाँव न निकला। पीछे-पीछे साईस आ रहा था। मालिक ने बड़ी कातरता से साईस की तरफ़ देखा। साईस अपनी जगह से न हिला उसने वहीं से इक़रारनामे को दिखाकर कहा—सरकार, इसमें कोई ऐसी शर्त नहीं लिखी है इसलिए मैं आपको बचाने में असमर्थ हूँ।

जिस समय सर सैयद अहमद ख़ाँ ने अलीगढ़ कालेज स्थापित किया था और मुसलमान जाति में नई आत्मा का सञ्चार किया था उस समय जैसा कि नियम है अनेक पुराने ढर्रे के मुसलमान उनके प्रतिकूल हो गए थे। यहाँ तक कि उनके ग्रन्थों की, अनेक दुष्ट समालोचनाएँ निकलने लगी थीं। मुसलमानों में जो नाम दाम पैदा करना चाहता था सर सैयद की निन्दा करने लगता था या उनके ग्रन्थों की उल्टी सीधी समालोचना लिखने लगता था। इसी तरह के लेखों की तरफ़ सङ्केत करके हाली कहते हैं—

नं० ४. इक मौलवी कि तंग बहुत था मुआश से।
बरसों रहा तलाश में वज्ह-ऐ मआश की॥ १॥

वह शहर शहर नौकरी की टोह में फिरा।
लेकिन् न उसके हाथ कहीं नौकरी लगी ॥ २ ॥
अखबार भी निकाल के बख्त आज़माई की।
तदबीर यह भी उसकी न तक़दीर से चली ॥ ३ ॥
रोज़ी की खातिर उसने किये सैकड़ों जतन।
पर की कहीं नसीब ने उसके न यावरी ॥ ४ ॥
राहे तलब में जब हुई सर गश्तगी बहुत।
इक खिज़्र पै खजिस्ता ने की आके रहबरी ॥ ५ ॥
झुककर कहा यह कान में उसके कि आज-कल।
सुनता हूँ छप रही है तसानीफ़े अहमदी ॥ ६ ॥
जा और लफ़्ज लफ़्ज़ को उसके छिथेड़कर।
तरदीद उसकी छाप दे जो हो बुरी भली ॥ ७ ॥
फिर देखना कि रासो चपो गर्दो पेश से।
लगती है कैसी आके ज़रो सीम की झड़ी ॥ ८ ॥
दुनिया तलब को चाहिए इबला फ़रेब हो।
दुनिया पै जब तलक कि मुसल्लत है अबलही ॥ ९ ॥

अर्थ स्पष्ट है और कवि के अपने शब्दों में ही खूब झलक रहा है।

उन ईश्वरवादियों के लिए जो मूर्तिपूजकों को अपने जोड़ का ईश्वरभक्त नहीं समझते हाली की फटकार सुनिए—

नं० ६. आती नहीं है शर्म तुझे ऐ ख़ुदा परस्त।
दिल में कहीं निशां नहीं तेरे यक़ीन का ॥ १ ॥
जी में तेरे हज़ारों गुज़रते हैं वसवसे।
होती नहीं क़बूल तेरी इक अगर दुआ ॥ २ ॥
तुझसे हज़ार मर्तबा बेहतर है बुत परस्त।
जिसका यक़ीं है तेरे यक़ीं से कहीं सिवा ॥ ३ ॥

वह माँगता खुदा से मुरादें है उम्रभर।
गो हाजत उसकी उससे हुई है न हो रवा ॥ ४ ॥
आता नहीं यक़ीन में उसके कभी क़ुसूर।
उम्मेद उस की रोजे फ़िज़ है और इल्तजा ॥ ५ ॥
गो बन्द-ये गरज़ है वह राज़ो रज़ा पै है।
वह है कि यह है बन्दगी ऐ बन्द-ये खुदा ? ॥ ६ ॥

वाचालता

नं० ७. है मर्द सखुन साज़ भी दुनिया में अजब चीज़।
पाओगे किसी फ़न में कहीं बन्द न उसको ॥ १ ॥
मौजूद सखुन गो हों जहाँ वाँ है तबीब आप।
और जाते हैं बन आप तबीबों में सखुन गो ॥ २ ॥
दोनों में से कोई न हो तो आप हैं सब कुछ।
पर—हेच हैं जिस वक़्त कि मौजूद हों दोनों ॥ ३ ॥

इसी तरह का भाव फ़ारसी के किसी शाइर ने भी अपने एक क़ते में बाँधा है। मालूम होता है कविवर हाली ने उसी का उर्दू में अनुवाद कर दिया है। संस्कृत में भी किसी कवि ने इसी तरह की बातें कही हैं—उन्हें भी सुनिए—

यत्र शाब्दिकास्तत्र तार्किका यत्र तार्किकास्तत्र शाब्दिकाः।
यत्र नोभयोस्तत्र चोभयो यत्र चोभयोस्तत्र नोभयोः॥

आत्मश्लाघा

नं० ८. ऐ दिल बशर वह कौन है जो ख़ुद सिता नहीं।
पर ख़ुद सिताइयों के हैं उनवाँ जुदा जुदा ॥ १ ॥

जो ज़ेवरे ख़िरद से बरः सादा [illegible] ।
करते हैं ख़ूबियाँ वह बयाँ अपनी बरमला ॥ २ ॥
जो अज़ले तेज़ होश हैं सौ सौ तरह से वह ।
परदों में करते हैं इसी मज़मून को अदा ॥ ३ ॥
कहता है एक कैसी हिमाक़त हुई है आज ।
कम्बल था एक घर में सो साइल को दे दिया ॥ ४ ॥
कहता है दूसरा कि गया होके मुनफ़अल ।
सायल की डब में मैंने दिया माल जब दिखा ॥ ५ ॥
परदे में ज़रकी के छिपाता है बुख़्ल यह ।
और बनके बेवक़ूफ़ जताता है वह सख़ा ॥ ६ ॥
कुछ इसलिए कि हम भी उन्हीं में से हों शुमार ।
अहले वतन की अपने बहुत करते हैं सना ॥ ७ ॥
कुछ इसलिए कि अपना हो इन्साफ़ आश्कार ।
करते हैं अपनी क़ौम की तनक़ीस जाबजा ॥ ८ ॥
कहता है एक लाख न माने बुरा कोई ।
है ऐब साफ़ गोई का हममें बहुत बड़ा ॥ ९ ॥
कहता है एक गुर है ख़ुशामद का और ही ।
परचाते आदमी को हैं कह कहके हम बुरा ॥ १० ॥
धोका हुनर का देके छिपाता है ऐब यह ।
और मुँह से दुर्द कह के दिखाता है वह सफ़ा ॥ ११ ॥
चुपचाप सुन रहा है कोई अपनी ख़ूबियाँ ।
यानी कि यह बयान है सब रास्त और बजा ॥ १२ ॥
कहता है इसपै कोई कि सब हुस्ने ज़िन है यह ।
इक ख़ाकसार को जो दिया तुमने यूँ बढ़ा ॥ १३ ॥
क़ानय है वह उन्हीं पै हुए वस्फ़ जो बयाँ ।
और चाहता है यह कि हो तारीफ़ कुछ सिवा ॥ १४ ॥

कहता है जेद अमरू है शिद्दत से सादा लोह।
गिनता है सब को नेक वह—अच्छा हो या बुरा॥ १५॥
कहता है अमरू जेद भी कितना है ऐब बीं।
बद हो कि नेक उसकी ज़ुबां से नहीं बचा॥ १६॥
यह उसका और वह इसका बयां करके कोई ऐब।
हर इक है अपनी अपनी बड़ाई निकालता॥ १७॥
गीबत उमेद है कि न होती जहान में।
होता अगर यह ख़ाक का पुतला न ख़ुद सिता॥ १८॥
हाली जो पत्रे खोल रहे हैं जहान के।
शायद कि इससे आपका होगा यह मुद्दआ॥ १९॥
यानी कि लाख परदों में कोई छिपाये ऐब।
अपनी नज़र से रह नहीं सकता कभी छिपा॥ २०॥
अलक़िस्सा जिसको देखिए जाहिल हो या हकीम।
आज़ार में ख़ुदी के है बेचारह मुबतिला॥ २१॥

रे मन, वह कौन व्यक्ति है जिसे आत्मश्लाघा पसन्द नहीं। हाँ, यह ज़रूर है कि तारीफ़ करने के ढंग-लोगों के जुदा-जुदा हैं। जो सीधे-सादे हैं और विशेष पढ़े लिखे भी नहीं हैं वे बिना हल्दी मिर्च लगाये ही अपनी प्रशंसा सबके सामने करने लगते हैं। किन्तु जो हुशियार हैं वे अपनी श्लाघा को अनेक पर्दों में छिपाकर वर्णन करते हैं। इस तरह के कुछ उदाहरण सुनिए। एक कहता है आज कैसी मूर्खता की है—एक ही कम्बल था सो वही भिखमंगे को दे दिया, अब स्वयं क्या ओढ़ेंगे! दूसरा कहता है मैंने भी आज एक भिक्षुक को कुछ देना चाहा था; किन्तु जब मैंने देखा कि

उसकी झोली भरी हुई है तब मैंने कुछ न दिया और वह भी लज्जित होकर चला गया। इनमें एक ने भोला बनकर अपनी उदारता दिखाई तो दूसरे ने बुद्धिमानी के साथ अपनी कंजूसी को छिपाया। एक कहता है भाई, चाहे कोई लाख बुरा माने परन्तु हम सच्ची बात कहने से नहीं रुक सकते। स्पष्ट-वादिता का हममें निस्सन्देह बुरा दोष पैदा हो गया है। दूसरा कहता है हमें ख़ुशामद करनी तो आती नहीं हम तो बुराई दिखाकर ही दूसरे का उपकार करते हैं। कोई अपनी तारीफ़ चुपचाप सुनता रहता है। इसका यह मतलब है कि जो कुछ कहा जा रहा है सब ठीक है। दूसरा आदमी अपनी बड़ाई सुनकर कहता है कि आपकी यह कृपा ही कृपा है जो इस अधम पुरुष को आप इतना बढ़ा रहे हैं। ऐसा कहनेवाले का मतलब यह होता है कि प्रशंसा का स्रोत और वेग से बहे, उसकी और तारीफ़ की जाय। कुछ आदमी दूसरों की बुरा-इयाँ निकालकर अपनी बड़ाई दिखाने का उपक्रम करते हैं। मनुष्य यदि आत्मश्लाघा के रोग में फँसा हुआ न होता तो संसार में दूसरों की बुराई करने की प्रवृत्ति बहुत ही कम दिखाई पड़ती। मतलब यह कि चाहे विद्वान् हो या मूर्ख सभी किसी न किसी तरह इस रोग में फँसे हुए हैं! १—२१।

क़ानून के विषय में हाली की एक व्यंग्योक्ति सुनिए-

पर जो सच पूछो नहीं क़ानून में।
जान कुछ मकड़ी के जाले से सिवा ॥ २ ॥
उसमें फँस जाते हैं जो कमज़ोर हैं।
और हिला सकते नहीं कुछ दस्तो पा ॥ ३ ॥
पर उसे देते हैं तोड़ इक आन में।
जो सकत रखते हैं हाथों में ज़रा ॥ ४ ॥
हक़ में कमज़ोरों के है क़ानून वह।
और नज़र में ज़ोरमन्दों की है—'ला' ॥ ५ ॥

अँगरेज़ी में क़ानून को 'ला' कहते हैं। कविवर हाली ने अन्तिम पद्य में "ला" शब्द श्लिष्ट रक्खा है। क्योंकि फ़ारसी में 'ला' का अर्थ 'नहीं' का है। अर्थात् कमज़ोरों की दृष्टि में जो क़ानून है समर्थ पुरुषों की दृष्टि में वही "ला" है—कुछ नहीं है। मतलब यह कि वे लोग अपनी शक्ति से क़ानून को कुछ नहीं समझते। ऊपर के अन्य शेरों का अर्थ स्पष्ट है।

बालिग़ होने से पहले विवाह न करना चाहिए। हाली इस विषय को कितनी अच्छी तरह से कहते हैं—

नं० १०. जब तक कि शाहज़ादा अट्ठारह साल का हो।
तख़्ते पिदर पै उसको ममनूअ है बिठाना ॥ १ ॥
क़ानून है बनाया यह उन मुक़न्निनों ने।
आलम में आजकल जो माने हुए हैं दाना ॥ २ ॥

लेकिन करें न उसकी कल्लज़बलूग़ शादी ।
कहते हैं वह अबस है क़ानून यह बनाया ॥ ३ ॥
नज़दीक उनके गोया बरज़ोम अक़्लो क़ामिल ।
है किंगडम* से आसाँ मैडम को बस में लाना ॥ ४ ॥

राज्यसिंहासन पर बैठने के लिए धर्म्मशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डितों ने १८ वर्ष की आयु नियत की है किन्तु विवाह के लिए वह इस अवधि की ज़रूरत नहीं समझते, इससे मालूम होता है कि स्त्री का महत्त्व राज्य से अधिक नहीं है। कवि ने व्यङ्ग्य द्वारा अपनी सहानुभूति बालविवाह के विरुद्ध प्रकट की है।

नं० ११. जाते हैं अगर पास अमीरों के ख़िरदमन्द ।
वह जानते हैं जो कि है जाने की ज़रूरत ॥ १ ॥
पर अपनी ज़रूरत से ख़बरदार नहीं हैं ।
मिलते नहीं उक़ला से जो साहबे सरवत ॥ २ ॥
बीमार के मोहताज हैं जितने कि अतिब्बा ।
बीमार को कुछ इससे सिवा उनकी है हाजत ॥ ३ ॥

धनियों के पास विद्वान् जाते हैं। उन्हें उनके पास जाने की आवश्यकता है और वे उस आवश्यकता को अच्छी तरह जानते हैं। किन्तु धनियों को विद्वानों से मिलने की जो ज़रूरत है उसे वे अनुभव नहीं करते अतएव उनसे नहीं मिलते। निस्सन्देह वैद्य और डाक्टर बीमारों के मोहताज हैं किन्तु बीमार लोग उससे भी अधिक उनके मोहताज हैं।

* Kingdom = राज्य। Madam = स्त्री। भद्र स्त्री।

ग़रीब लोग अमीरों की अय्याशी पर हँसते हैं। उन्हें बुरा समझते हैं किन्तु सच यह है कि यदि वे ही ग़रीब रुपये-वाले हो जायँ तो उनसे भी बढ़कर अय्याश बन जायँ। उनका सदाचार ग़रीबी के कारण है—

नं० १२. ऐ बेनवाओं हँसते हो क्या मुनइमों पै तुम।
इख़लाक़ में कुछ उनके अगर आ गया बिगाड़॥ १॥
तुम ज़द से नफ़्स की हो तभी तक बचे हुए।
हो जब तलक कि पकड़े हुए मुफ़लिसी की आड़॥ २॥
असबाब जो कि जमा है मुनइम के गर्दों पेश।
गर तुमको हों नसीब तो दुनिया को दो उजाड़॥ ३॥

अर्थ स्पष्ट है।

काम अच्छा करना चाहिए न कि जल्द

नं० १३. काम अच्छा कोई बन आया अगर इन्साँ से।
उसने की ताख़ीर उसने जिस क़दर अच्छा किया॥ १॥
कब किया क्योंकर किया यह पूछता कोई नहीं।
बल्कि हैं यह देखते जो कुछ किया कैसा किया॥ २॥

काम अच्छा करना चाहिए। जल्द करने और ख़राब करने की तारीफ़ नहीं है। जो आदमी ख़ूब सोच-समझकर काम करते हैं चाहे देर में करते हैं अच्छा करते हैं। काम को देखकर कोई यह नहीं पूछता कि—कब किया, क्योंकर किया

किन्तु यही देखते हैं कि जो कुछ किया है कैसा किया है। अतएव काम अच्छा ही करना चाहिए।

धृष्ट भिक्षुक

नं० १४. इक बिरहमन मूरती के सामने बासद् नियाज़।
मांगता था हाथ फैलाये हुआ बैठा कहीं॥ १॥
आन निकला बानवा इक मांगता खाता उधर।
देख महवीयत बिरहमन की गया बस जम वहीं॥ २॥
जी में आया छेड़कर क़ायल बिरहमन को करे।
ताकि पूजे कुछ न कुछ यारों को होकर शर्मगीं॥ ३॥
मूरती के सामने जब कर चुका वह इल्तजा।
बानवा बोला कि है तू भी अजब कोताह बीं॥ ४॥
मूरती कुछ तुझको देगी और न दे सकती है वह।
नाहक़ इतनी इल्तजायें उसके आगे तूने कीं॥ ५॥
हँस के बिरहमन ने कहा है मांगना बन्दे का काम।
दे न दे वह इससे कुछ मतलब नहीं अपने तईं॥ ६॥
हम नहीं देते ढही तुम जैसे ढीटों की तरह।
हाथ फैलाते हैं लेकिन पाँव फैलाते नहीं॥ ७॥

मूर्ति-पूजक की निन्दा किसी ऐसे ढीठ फ़कीर ने की जो स्वयं मूर्ति-पूजक नहीं था पर था अव्वल दर्जे का बेशर्म भिखमंगा। उसकी अनर्गल बातों को सुनकर मूर्ति-पूजक ब्राह्मण ने कहा—'भाई, हम ईश्वर के बन्दे हैं उससे माँगना अपना धर्म्म समझते हैं। उसके आगे हम हाथ ज़रूर फैलाते हैं पर तेरी

तरह ढिठाई से पैर नहीं फैलाते।' "पैर फैलाना" ढीठ बन-कर माँगने के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

फ़िज़ूलख़र्ची का परिणाम

नं० १५. सिरे पै राह के बैठा था इक गदाये ज़रीफ़।
जहाँ से होके गुज़रते थे सब सग़ीरो कबीर ॥ १ ॥
हर इक से एक दिरम माँगता था बे कमो बेश।
सख़ो हो इसमें कि मुमसिक ग़रीब हो कि अमीर ॥ २ ॥
फ़िज़ूलख़र्च था बस्तो में एक दौलतमन्द।
कि जिसका था कोई असराफ़ में न शिबहो नज़ीर ॥ ३ ॥
हुआ जो एक दिन उस राह से गुज़र उसका।
दिरम इक उसने भी चाहा कि कीजे नज़रे फ़क़ीर ॥ ४ ॥
कहा फ़क़ीर ने गो अपनी यह नहीं आदत।
कि लें दिरम से ज़्यादा किसी से एक शईर ॥ ५ ॥
पै लूँगा आप से मैं पाँच कम से कम दीनार।
कि दौलत आपकी पाता हूँ मैं ज़वाल पज़ीर ॥ ६ ॥
यही अलल्ले तलल्ले रहे तो आपको भी।
हमारी तरह से होना है एक रोज़ फ़क़ीर ॥ ७ ॥
सो वक़्त है यही लेने का ख़ुद बदौलत से।
दिखाये देखिए फिर इसके बाद क्या तक़दीर ॥ ८ ॥

किसी फ़क़ीर का दस्तूर था कि न एक दिरम (ढाई रुपये के बराबर का एक सिक्का) से कम लेता था और न ज़्यादा। एक दिन कोई फ़िज़ूलख़र्च रईस उधर निकल आया जिधर फ़क़ीर बैठा था। उसने फ़क़ीर को एक दिरम देना चाहा किन्तु

फ़क़ीर ने कहा कि आपसे मैं अपने नियम के विरुद्ध पाँच दिरमों से कम न लूँगा। इसका एक कारण है। आपकी सम्पत्ति तो नष्टप्राय है ही फिर मैं भी उससे क्यों न फ़ायदा उठाऊँ। यहीं अलल्ले तलल्ले हैं तो कुछ दिनों में ही आप भी "सर्व वै पूर्णं स्वाहा" करके फ़क़ीर हो जायँगे। इसलिए आपसे कुछ प्राप्त करने का यही एकमात्र अवसर है। कल को आपका प्रारब्ध कैसा रंग बदलेगा—कौन जानता है। १—८॥

मतों का भेद कभी दूर नहीं हो सकता

नं० १६. ग़ैर मुमकिन है कि उठ जाये दलीलो बहस से।
जो चला आता है बाहम अहले मज़हब में ख़िलाफ़॥ १॥
हो नहीं सकता मुताबिक़ जब कि दो घड़ियों का वक़्त।
रफ़ा हो सकते हैं फिर क्योंकर हज़ारों इख़्तिलाफ़॥ २॥

अर्थ स्पष्ट है!

मनुष्य सबसे श्रेष्ठ होकर भी अधिक दुखी है

नं० १७. दिलपै जो कैफ़ियतें हैं नागवार।
दो हैं उनमें से निहायत जाँ गिज़ा॥ १॥
एक फ़िक्र उस आनेवाले वक़्त की।
शक नहीं है जिसके आने में ज़रा॥ २॥
दूसरे चोटें ज़ुबाने ख़ल्क़ की।
ज़ख़्म जिनका ज़ख़्म है तलवार का॥ ३॥

और भी हैवाने नातिक़ के लिए।
हैं बहुत सी ज़ोहमतें इनके सिवा ॥ ४ ॥
पर गधे और और हैवानात सब।
रहते हैं दूर इन गज़न्दों से सदा ॥ ५ ॥
कैसा इन आलाम से रहता निचन्त।
अशरफ़ुल मख़लूक़ अगर होता गधा ॥ ६ ॥

मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है किन्तु फिर भी ख़ूब दुःखी है। उसे आनेवाले समय की सदा चिन्ता लगी रहती है। दूसरे जन-साधारण के आक्षेपों की चोटों से उसका दिल घायल रहता है। इनके सिवा मनुष्य को और भी अनेक तरह की यन्त्रणाएँ भोगनी पड़ती हैं। गधे और अन्य पशु इन आधि-व्याधियों से दूर रहते हैं। आहा, यदि सर्वश्रेष्ठ प्राणी मनुष्य भी गधा होता तो इन दुःखों से कैसा निश्चिन्त रहता!

तीसरा अध्याय

प्राकृतिक कविताएँ

कविवर हाली ने अनेक प्राकृतिक कविताएँ लिखकर उर्दू में नये और बढ़िया ढङ्ग की कविता लिखने का मार्ग निकाला। आपही ने सबसे पहले अँगरेज़ी की तरह उर्दू में अपनी प्रखर प्रतिभा के बल से किसी एक विषय पर प्राकृतिक वर्णनयुक्त कविता लिखनी प्रारम्भ की। उनमें से कुछ कविताओं का कहीं कहीं से रसास्वादन पाठकों को कराया जाता है।

नीचे जिस कविता में से कुछ अंश उद्धृत किया जाता है उसका नाम कविवर हाली ने "बरखारुत" रक्खा है। इसी से मालूम हो सकता है कि हाली स्वाभाविकता के कितने भक्त थे। "मौसमे बरसात" से 'बरखारुत' में कितना अधिक भाव है कितना अधिक रस है और यह नाम हिन्दुस्तान के लिए कितना अधिक घरेलू है इस बात को आप ख़ूब जानते थे। इस बात का ध्यान आप सदा रखते थे। ख़ाविन्द के लिए 'बर' मौसम के लिए 'रुत' (ऋतु) दिल के लिए 'जी' और ऐसे ही बहुत से हिन्दी के स्वाभाविक शब्द आप व्यवहार में लाते थे। अब पाठक हाली की 'बरखा' देखिए, कैसी रस की वर्षा की है।

गर्मी की तपिश बुझानेवाली।
सर्दी का पयाम लानेवाली ॥ १ ॥
कुदरत के अजायबात की काँ।
आरिफ़ के लिए किताबे इरफ़ाँ ॥ २ ॥
वह सारे बरस की जान बरसात।
वह कौन ख़ुदा की शान बरसात ॥ ३ ॥
आई है बहुत दुआओं के बाद।
और सैकड़ों इल्तजाओं के बाद ॥ ४ ॥
वह आई तो आई जान में जान।
सब थे कोई दिन के वर्ना मेहमान ॥ ५ ॥
गर्मी से तड़प रहे थे जाँदार।
और धूप में तप रहे थे कुहसार ॥ ६ ॥
भूबल से सिवा था रेगे सहरा।
और खौल रहा था आबे दरिया ॥ ७ ॥
थी लूट सी पड़ रही चमन में।
और आग सी लग रही थी बन में ॥ ८ ॥
सांडे थे बिलों में मुँह छिपाये।
और हाँप रहे थे चारपाये ॥ ९ ॥
थीं लोमड़ियाँ ज़बाँ निकाले।
और लू से हिरन हुए थे काले ॥ १० ॥
चीतों को न थी शिकार की सुध।
हिरनों को न थी क़तार की सुध ॥ ११ ॥
थे शेर पड़े कछार में सुस्त।
घड़ियाल थे रादबार में सुस्त ॥ १२ ॥
ढोरों का हुआ था हाल पतला।
बैलों ने दिया था डाल कन्धा ॥ १३ ॥

भैंसों के लहू न था बदन में।
और दूध न था गऊ के थन में॥ १४॥
घोड़ों का छुटा था घास दाना।
था प्यास का इस पै ताज़ियाना॥ १५॥
गर्मी का लगा हुआ था भपका।
और अंस निकल रहा था सबका॥ १६॥
तूफ़ान थे आंधियों के बरपा।
उठता था बगोले पर बगोला॥ १७॥
आरे थे बदन पै लू के चलते।
शोले थे ज़मीन से निकलते॥ १८॥
थी आग का दे रही हवा काम।
था आग का नाम मुफ्त बदनाम॥ १९॥
रस्तों पै सवार और पैदल।
सब धूप के हात से थे बेकल॥ २०॥
घोड़ों के न आगे उठते थे पाँव।
मिलती थी कहीं जो रूख की छांव॥ २१॥
थी सबकी निगाह सूये अफ़लाक।
पानी की जगह बरसती थी ख़ाक॥ २२॥
पंखे से निकलती जो हवा थी।
वह बादे सिमूम से सिवा थी॥ २३॥
बुझती न थी आतिशे दरूनी।
लगती थी हवा से आग दूनी॥ २४॥
सात आठ बजे से दिन छिपे तक।
आंगारों पै धूप की थी दस्तक॥ २५॥
टट्टी में था दिन गँवाता कोई।
तहख़ाने में मुँह छुपाता कोई॥ २६॥

बाज़ार पड़े थे सारे सुनसान।
आती थी नज़र न शक्ले इन्सान॥ २७॥
चलती थी दुकान जिनकी दिनरात।
बैठे थे वह हात पै धरे हात॥ २८॥

× × × × ×
× × × × ×

बरसात के पूर्वरूप गर्मी का निदर्शन करके अब हाली महोदय वर्षा का वर्णन आरम्भ करते हैं—

कल शाम तलक तो थे यही तौर।
पर रात से है समा ही कुछ और॥ १॥
पुरवा की दुहाई फिर रही है।
पछुवा से ख़ुदाई फिर रही है॥ २॥
बरसात का बज रहा है डंका।
इक शोर है आस्मां पै बरपा॥ ३॥
है अब्र की फ़ौज आगे आगे।
और पीछे हैं दल के दल हवा के॥ ४॥
हैं रंग बरंग के रिसाले।
गोरे हैं कहीं कहीं हैं काले॥ १५॥*
है चर्ख़ पै छावनी सी छाती।
एक आती है फ़ौज एक जाती॥ १६॥
जाते हैं मुहिम पै कोई जाने।
हमराह हैं लाखों तोपख़ाने॥ १७॥

* कैसा बढ़िया श्लिष्ट पद्य है। गोरों और कालों के रिसाले का श्लेष बहुत साफ़ है। इन पद्यों में कविवर हाली ने कैसा स्वाभाविक और मनोहर रूपक बांधा है।

तोपों की है जब कि बाढ़ चलती ।
छाती है ज़मीन की दहलती ॥ १८ ॥
मेंह का है ज़मीन पर दड़ेड़ा ।
गर्मी का डुबो दिया है बेड़ा ॥ १९ ॥
बिजली है कभी जो कौंद जाती ।
आँखों में है रोशनी सी आती ॥ २० ॥
घनघोर घटाएँ छा रही हैं ।
जन्नत की हवाएँ आ रही हैं ॥ २१ ॥
कोसों है जिधर निगाह जाती ।
कुदरत है नज़र ख़ुदा की आती ॥ २२ ॥
सूरज ने नक़ाब ली है मुँह पर ।
और धूप ने तह किया है बिस्तर ॥ २३ ॥
बाग़ों ने किया है ग़ुस्ले सेहत ।
खेतों को मिला है सब्ज़ ख़िलअत ॥ २४ ॥
सब्ज़े से कोहो दश्त मामूर ।
है चार तरफ़ बरस रहा नूर ॥ २५ ॥
बटिया है न है सड़क नमूदार ।
अटकल से हैं राह चलते रहवार ॥ २६ ॥
है संगों शजर की एक वर्दी ।
आलम है तमाम लाजवरदी ॥ २७ ॥
फूलों से पटे हुए हैं कुहसार ।
दूल्हा से बने हुए हैं अशजार ॥ २८ ॥
पानी से भरे हुए हैं जल थल ।
है गूँज रहा तमाम जंगल ॥ २९ ॥
करते हैं पपीहे पी हो पी हो ।
और मोर चिंघाड़ते हैं हर सू ॥ ३० ॥

कोयल की है कूक जी लुभाती।
गोया कि है दिल में पैठी जाती ॥ ३१ ॥
मेंडक जो हैं बोलने पै आते।
संसार को सर पै हैं उठाते ॥ ३२ ॥

× × × × ×
× × × × ×

रक्षक जो बड़े हैं जैन मत के।
ढकने हैं दियों पै ढकते फिरते ॥ ३३ ॥
करते हैं वह यूँ जियों की रक्षा।
ता जल न बुझे कोई पतंगा ॥ ३४ ॥

× × × × ×

हैं शुक्रगुज़ार तेरे बरसात।
इन्सां से लेके ता जमादात ॥ ३५ ॥
दुनिया में बहुत थी चाह तेरी।
सब देख रहे थे राह तेरी ॥ ३६ ॥

× × × × ×

दरिया तुझ बिन ससक रहे थे।
और बन तेरी राह तक रहे थे ॥ ३७ ॥
दरियाओं में तूने डाल दी जां।
और तुझसे बनों को लग गई शां ॥ ३८ ॥
जिन झीलों में कल थी खाक उड़ती।
मिलती नहीं आज थाह उनकी ॥ ३९ ॥
दौलत जो ज़मीन में थीं मख़फ़ी।
आगे तेरे उसने सब उगल दी ॥ ४० ॥
थे रेत के जिस ज़मीं पै अम्बार।
है वीरबहूटियों से गुलनार ॥ ४१ ॥

× × × × ×

ज़ोरों पै चढ़ा हुआ है पानी।
मौजों की हैं सूरतें डरानी॥ ४२॥
नावें कि हैं डगमगा रही हैं।
मौजों के थपेड़े खा रही हैं॥ ४३॥
मल्लाहों के उड़ रहे हैं औसाँ।
बेड़े का ख़ुदा ही है निगहबाँ॥ ४४॥
मँजधार की रौ भी ज़ोर पर है।
मछली को भी जान का ख़तर है!॥ ४५॥

वर्षाऋतु के वर्णन में कविवर हाली ने, पाठक आपने देखा, कैसे स्वाभाविक भावों की अवतारणा की है। उसके रूपक कैसे मनोहर और अछूते हैं। ऊपर के शेर इतने साफ़ हैं कि उनके हिन्दी अनुवाद की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। इस कविता में आये कठिन शब्दों का अर्थ पाठकों को ज़रूरत पड़ने पर यथास्थान मिल सकता है। स्वाभाविक भावों के साथ स्वाभाविक भाषा भी देखने योग्य है।

"निशाते उमेद" में आशा के माधुर्य पर हाली के भाव देखिए—

नं० २.

काटनेवाली ग़मे अय्याम की।
थामनेवाली दिले नाकाम की॥ १॥
तुझसे है मोहताज का दिल बेहिरास।
तुझसे है बीमार को जीने की आस॥ २॥
राम के हमराह चढ़ी रन में तू।
पांडवों के साथ फिरी बन में तू॥ ३॥

ज़र्रे को ख़ुरशेद में दे तू खपा।
बन्दे को अल्लाह से दे तू मिला॥ ४॥

अब आशा के स्वरूप का वर्णन सुनिए—

एक तमन्ना में है औलाद की।
एक को दिलदार की है लौ लगी॥ ५॥
एक को है धुन कि जो कुछ हाथ आये।
धूम से औलाद की शादी रचाये॥ ६॥
एक को कुछ आज अगर मिल गया।
कल की है यह फ़िक्र कि खायँगे क्या॥ ७॥
जो है ग़रज़ उसको नई जुस्तजू।
लाख अगर दिल हैं तो लाख आरज़ू॥ ८॥
तुझसे हैं दिल सब के बाग़ बाग़।
गुल कोई होने नहीं पाता चिराग़॥ ९॥
तुझमें छुपा राहते जाँ का है भेद।
छोड़ियो हाली का न साथ ऐ उमेद॥ १०॥

जन्मभूमि

हाली मुसल्मानों के जातीय कवि थे किन्तु वे थे बड़े उदार। उनके लेखों और काव्य से यह बात यत्र-तत्र खूब अच्छी तरह प्रतीत होती है। वे सङ्कीर्ण नीति के कभी अनुयायी नहीं हुए। इसमें सन्देह नहीं कि उनका कुल जीवन मुसल्मानों ही की उन्नति में लगा रहा और मुसल्मानों की जातीय उन्नति को ही वे अपने जीवन का व्रत समझते थे, यही कारण है कि उनकी उन ग़ज़लों में भी जिनमें शृङ्गाररस का प्राधान्य था दो-चार शेर जातीय भाव से पूर्ण मिलते हैं। मुसल्मान

होकर मुसल्मानों की उन्नति के लिए चेष्टा करना उनके लिए ठीक ही था और प्रत्येक जाति के प्रत्येक मनुष्य को अपनी जाति की उन्नति करनी चाहिए। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उनके भाव अत्यन्त उदार और उनका मन सबके लिए प्रेम से पूर्ण था। पाठक, अब उनकी देशभक्ति-पूर्ण कविता को सुनिए—

नं० ३.

ऐ सपहरे बरा के सय्यारो।
ऐ फ़िज़ाये ज़मीं के गुलज़ारो॥ १॥
ऐ पहाड़ों की दिल फ़रेब फ़िज़ा।
ऐ लबे जू की ठंडी ठंडी हवा॥ २॥
ऐ अनादिल के नग़मये सहरी।
ऐ शबे माहताब तारों भरी॥ ३॥
ऐ नसीमे बहार के झोको।
दहरे ना पायदार के धोको॥ ४॥
तुम हर इक हाल में हो यूँ तो अज़ीज़।
थे वतन में मगर कुछ और ही चीज़॥ ५॥
जब वतन में हमारा था रहना।
तुमसे दिल बाग़ बाग़ था अपना॥ ६॥
तुम, मेरी दिल्लगी के सामाँ थे।
तुम मेरे दर्दे दिल के दरमाँ थे॥ ७॥
तुम से कटता था रंजे तनहाई।
तुम से पाता था दिल शिकेबाई॥ ८॥
आन इक इक तुम्हारी भाती थी।
जो अदा थी वह जी लुभाती थी॥ ९॥

× × × × × ×

है कोई अपनी क़ौम का हमदर्द ।
नोअ इन्साँ का जिसको समझें फ़र्द ॥ १० ॥
जिसपै इत्तलाक़ आदमी हो सहीह ।
जिसको हैवाँ पै दे सकें तर्जीह ॥ ११ ॥
क़ौम पै कोई ज़द न देख सके ।
क़ौम का हाले बद न देख सके ॥ १२ ॥
क़ौम से जान तक अज़ीज़ न हो ।
क़ौम से बढ़ के कोई चीज़ न हो ॥ १३ ॥
समझे उनकी ख़ुशी को राहते-जाँ ।
वहाँ जो नौ रोज़ हो तो ईद हो याँ ॥ १४
रंज को उनके समझे माय-ये ग़म ।
वाँ अगर सोग हो तो याँ मातम ॥ १५ ॥
भूल जाये सब अपनी, क़द्रे जलील ।
देखकर भाइयों को ख़्वारो ज़लील ॥ १६ ॥
जब पड़े उनपै गर्दिशे-अफ़लाक ।
अपनी आसायशों पै डाल दे ख़ाक ॥ १७ ॥

× × × × × ×

बैठे बेफ़िक्र क्या हो हम वतनो !
उठो अहले वतन के दोस्त बनो ॥ १८ ॥
मर्द हो तो किसी के काम आओ ।
वर्ना खाओ पिओ चले जाओ ॥ १९ ॥

× × × × × ×

जागनेवालो ग़ाफ़िलों को जगाओ ।
तैरनेवालो डूबतों को तिराओ ॥ २० ॥
तुम अगर हाथ पाँव रखते हो ।
लँगड़े लूलों को कुछ सहारा दो ॥ २१ ॥

तन्दुरुस्ती का शुक्र क्या है बताओ।
रंज बीमार भाइयों का बटाओ ॥ २२ ॥
तुम अगर चाहते हो मुल्क की ख़ैर।
न किसी हम वतन को समझो ग़ैर ॥ २३ ॥
हो मुसलमान इसमें या हिन्दू।
बौध मज़हब हो या कि हो ब्रह्म ॥ २४ ॥
सब को मीठी निगाह से देखो।
समझो आँखों की पुतलियाँ सबको ॥ २५ ॥

× × × × × ×

कि जिन्हें भाइयों का ग़म होगा।
अपनी राहत का ध्यान कम होगा ॥ २६ ॥
जितने देखोगे पाओगे बे दर्द।
दिल के नामर्द और नाम के मर्द ॥ २७ ॥
सेर भूके की क़द्र क्या समझे।
उसके नज़दीक सब हैं पेट भरे ॥ २८ ॥

× × × × × ×

अहले दौलत का सुन चुके अहवाल।
अब सुनो रूयेदाद अहले कमाल ॥ २९ ॥
फ़ाज़िलों का है फ़ाज़िलों से अनाद।
पंडितों में पड़े हुए हैं फ़िसाद ॥ ३० ॥
है तबीबों में नोक झोक सदा।
एक से एक का है थोक जुदा ॥ ३१ ॥
नुसख़ा इक तिब का जिसको आता है।
सगे भाई से वह छिपाता है ॥ ३२ ॥
अल ग़रज़ जिसके पास है कुछ चीज़।
जान से भी सिवा है उसको अज़ीज़ ॥ ३३ ॥

क़ौम पर इनका कुछ नहीं ऐहसां।
इनका होना न होना है यकसाँ॥ ३४॥
सब कमालात और हुनर उनके।
क़ब्र में उनके साथ जायँगे॥ ३५॥
क़ौम क्या कहके उनको रोयेगी।
नाम पै क्योंके जान खोयेगी॥ ३६॥
अहले इंसाफ़ शर्म की जा है।
गर नहीं बुख़्ल यह तो फिर क्या है?॥ ३७॥
तुमने देखा है जो वह सबको दिखाओ।
तुमने चक्खा है जो वह सबको चखाओ॥ ३८॥
आप शाइस्ता हैं तो अपने लिए।
कुछ सलूक अपनी क़ौम से भी किये?॥ ३९॥

इसके आगे हाली महोदय इँगलैंड के देशभक्त युवकों का ज़िक्र करते हैं। उनकी देशभक्ति की तारीफ़ करते हुए वे कहते हैं—

क़ौम की ख़ातिर उनके हैं सब काम।
ख़्वाह इसमें सफ़र हो ख़्वाह मुक़ाम॥ ४०॥
सैकड़ों गुलरुख़ और मे पारे।
लाडले मां के बाप के प्यारे॥ ४१॥
जान अपनी लिये हतेली पर।
करते फिरते हैं बहरो बर के सफ़र॥ ४२॥
शौक़ यह है कि जान जाये तो जाये।
पर कोई बात काम की हात आये॥ ४३॥
जिससे मुश्किल हो कोई क़ौम की हल।
मुल्क का आये कोई काम निकल॥ ४४॥

खप गये कितने बन के झाड़ों में।
मर गये सैकड़ों पहाड़ों में॥
लिखे जब तक जिये सफ़रनामे।
चल दिये हाथ में क़लम थामे॥

इस कविता का उपसंहार करते हुए हाली कहते हैं—

क़ौम का मुब्तज़िल है जो इन्साँ।
बे हक़ीक़त है गर्चे है सुलताँ॥ ४५॥
क़ौम दुनिया में जिसकी है मुमताज़।
है फ़क़ीरी में भी वह बा ऐज़ाज़॥ ४६॥
इज़्ज़ते क़ौम चाहते हो अगर।
जाके फैलाओ उनमें इल्मो हुनर॥ ४७॥
ज़ात का फ़ख़् और नसब का ग़रूर।
उठ गये अब जहाँ से यह दस्तूर॥ ४८॥
अब न सय्यद का इफ़्तख़ार सहीह।
न बिरहमन को शूद्र पर तर्जीह॥ ४९॥
हुई तुरकी तमाम ख़ानों की।
कट गई जड़ से ख़ान्दानों की॥ ५०॥
क़ौम की इज़्ज़त अब हुनर से है।
इल्म से या कि सीमोज़र से है॥ ५१॥
कोई दिन में वह दौर आयेगा।
बे हुनर भीक तक न पायेगा॥ ५२॥

न रहेंगे सदा यही दिन रात।
याद रखना हमारी आज की बात॥ ५३॥
गर नहा सुनते क़ौल हाली का।
फिर न कहना कि कोई कहता था॥ ५४॥

पाठक, आपने देखा हाली महोदय ने जातीय भावों को जगाने के लिए कैसे अच्छे उपदेश दिये हैं। अब आपकी एक और कविता का कुछ अंश उद्धृत करके यह अध्याय समाप्त किया जाता है।

"मनाज़रे रहमो इंसाफ़" (दया और न्याय का झगड़ा) शीर्षक देकर हाली महोदय ने इस चिर-विवादपूर्ण विषय की समस्या कितनी अच्छी तरह की है, उसमें से कुछ एक पद्य पाठकों के विनोदार्थ यहाँ उद्धृत करते हैं—

नं० ४. एक दिन रहम ने इंसाफ़ से जाकर पूछा।
क्या सबब है कि तेरा नाम है दुनिया में बड़ा॥ १॥
नेकनामी से तेरी सख़्त तहय्यर है हमें।
हाँ सुनें हम भी कि हैं कौन सी ख़ूबी तुझमें॥ २॥
दोस्ती से तुझे कुछ दोस्तों की काम नहीं।
आँख में तेरी मुरव्वत का कहीं नाम नहीं॥ ३॥
अपने बेगाने हैं सब तेरी नज़र में यकसाँ।
दोस्त को फ़ायदा है तुझसे न दुश्मन को ज़ियाँ॥ ४॥
क़त्ले इंसान हमेशा से है आदत तेरी।
सैकड़ों चढ़ गये सूली पै बदौलत तेरी॥ ५॥
फ़ौज रावन की लड़ाई में खपाई किसने?
आग लंका में सिवा तेरे लगाई किसने॥ ६॥
जान पहचान का साथी है न अनजान का दोस्त।
यार हिन्दू का है तू और न मुसल्मान का दोस्त॥ ७॥
दम में तू सोहबते देरीना भुला देता है।
दोस्ती ख़ाक में बरसों की मिला देता है॥ ८॥

तौर बरताव का है सब से निराला तेरा।
तुझसा रूखा कोई दुनिया में न देखा न सुना ॥ ९ ॥
हठ पै तू अपनी जहाँ नामे खुदा आ जाये।
बाप के हात से बेटे का गला कटवाये ॥१०॥
इसी करतूत पै ऐ अद्ल ये दावे हैं तुझे।
"कि बिना अम्न की दुनिया में है क़ायम मुझसे ॥११॥"
एक तू है कि यगानों के हैं दिल तुझसे फ़िगार।
एक मैं हूँ कि नहीं ग़ैर भी मुझसे बेज़ार ॥१२॥
रहम है नाम मेरा लुत्फ़ो करम काम मेरा।
फ़ैज़ वीरान ओ आबाद में है आम मेरा ॥१३॥
मेरी सरकार में हो जाते हैं सब उज़्र क़बूल।
मेरे दरबार से जाते नहीं मुजरिम भी मलूल ॥१४॥
ग़म मेरे सामने शादी से बदल जाते हैं।
हँसते जाते हैं जो याँ रोते हुए आते हैं ॥१५॥
मैं हर इक दर्द में हो जाता हूँ इन्साँ के शरीक।
मैं न होता तो न देता कोई मोहताज को भीक ॥१६॥
मैं ही देता हूँ यतीमों को दिलासा जाकर।
मैं ही लेता हूँ बुरे हाल में राँडों की ख़बर ॥१७॥
तुझसे होते अगर ऐ अद्ल जहाँ में दो चार।
लुट गई होती कभी की मेरे गुलशन की बहार ॥१८॥

× × ×

जब सुना रहम से यह वलवला अंगेज़ ख़िताब।
कहा इन्साफ़ ने हो हुक्म तो दूँ इसका जवाब ॥१९॥
आपकी नेकियों से किसको है इंकार यहाँ।
क्योंकि है ज़िक्रे जमील आपका मशहूरे जहाँ ॥२०॥
मगर ऐ रहम बुरा मानने की बात नहीं।
नेकियाँ आपको कर दें न यह बदनाम कहीं ॥२१॥

हमने माना कि मुरव्वत भी बड़ी है इक चीज़।
पर मुरव्वत के लिए शर्त है ऐ दोस्त तमीज़ ॥२२॥
खो दिया जिसने मुरव्वत को यां आम किया।
उसको रुसवा किया और आपको बदनाम किया ॥२३॥
बोल मीठे नहीं आफ़त के यह परकाले हैं।
इस मुरव्वत ने तेरी सैकड़ों घर घाले हैं ॥२४॥
दोस्तों को है इशारा कि किसी से न डरो।
दुश्मनों से है यह मदारा कि जो चाहो सो करो ॥२५॥
चोर चोरी से नहीं डरते बदौलत तेरी।
लिये फिरती है उचक्कों की हिमायत तेरी ॥२६॥
अहलकारों का कचहरी में जो देखो ब्योहार।
समझो दीवाने अदालत को कि है इक बाज़ार ॥२७॥
पेट पकड़े हुए वां फिरते हैं हाजत वाले।
और मुँह खोले हुए बैठे हैं अदालत वाले ॥२८॥
नहीं हाकिम की मुरव्वत से उन्हें ख़ौफ़े मआल।
"बोल क्या लाया है" इज़हार का पहला है सवाल ॥२९॥
यूँ तो ऐ रहम तेरी ज़ात में जौहर हैं बहुत।
ख़ैर थोड़ी है मगर आपमें और शर हैं बहुत ॥३०॥
एक रहज़न को जो तू क़ैद से छुटवाता है।
बीसियों क़ाफ़लों को जान से लुटवाता है ॥३१॥
मीठी बातों में तेरी ज़हरे हलाहल है भरा।
तेरा आग़ाज़ तो अच्छा है पै अंजाम बुरा ॥३२॥
काश तू भी मेरे क़ानून पै चलता ऐ रहम।
अपने अन्दाज़े से बाहर न निकलता ऐ रहम ॥३३॥
बे मुरव्वत हूँ अगर मैं तो यह जौहर है मेरा।
जिसको तू ऐब समझता है वह ज़ेवर है मेरा ॥३४॥

रास्तबाज़ी जो सुनी हो वह तबीयत मेरी।
और अदालत जिसे कहते हैं वह आदत मेरी ॥३५॥
खो दिया मैंने निशां सल्तनते शख़्सी का।
और दुनिया से ग़ुलामी को मिटाके छोड़ा ॥३६॥
जो हुनरमन्द हैं दिल उनके बढ़ाता मैं हूँ।
ख़ूबियां उनकी ज़माने में जताता मैं हूँ ॥३७॥
ऊँचे ऊँचों से यहां लेते हैं ख़िदमत पूरी।
और मज़दूरों को देते हैं खरी मज़दूरी ॥३८॥
झूठे सच्चों का नहीं भेस बदलने पाते।
दाम बाज़ार में खोटे नहीं चलने पाते ॥३९॥

× × × × ×

गुफ़्तगू ख़त्म पै इन्साफ़ की जब आ पहुँची।
अ़क्ल पुरकार क़ज़ाकार वहां जा पहुँची ॥४०॥
वां जो देखा तो है दो भाइयों में कुछ तकरार।
और हर इक को बज़ुरगी पै है अपनी इसरार ॥४१॥
अ़क्ल ने दोनों की तक़रीर सुनी सरतापा।
कह चुके वह तो यह संजीदा जवाब उनको दिया ॥४२॥
ख़ैर—इक कान है तुम जिसके हो गौहर दोनों।
एक से एक हो तुम बेहतरो बरतर दोनों ॥४३॥
साफ़ कहती हूँ सुन ऐ रहम, नहीं इसमें ख़िलाफ़।
तू है इक क़ालिबे बेरूह न हो गर इंसाफ़ ॥४४॥
और सुन ऐ अद्ल नहीं इसमें तकल्लुफ़ सरेमू।
गर न हो रहम तो इक दीदये बेनूर है तू ॥४५॥
अभी एक नुक्ते में तुम दोनों को झुठलाती हूँ।
लो सुनो ग़ौर से मैं कहती हूँ और जाती हूँ ॥४६॥
फ़र्क़ असला नहीं तुम दोनों में लड़ते क्यों हो।
जब कि तुम एक हो आपस में झगड़ते क्यों हो ॥४७॥

वही इक शै है कि है अद्ल कहीं नाम उसका।
कहीं मज़लूम की फ़रियादरसी काम उसका ।।४८।।
रहम कहलाये जो मज़लूम की फ़रियाद सुने।
अद्ल ठहरे जो सज़ा ज़ालिमे बेरहम को दे ।।४९।।
वही शफ़क़त है कि उस्ताद की है मार कभी।
और माँ बाप की हो जाती है चुमकार कभी ।।५०।।
कहीं वह मेहर की सूरत में अयाँ होती है।
और कहीं क़हर के परदे में निहाँ होती है ।।५१।।
रहम और अद्ल से जब अक़्ल ने तक़रीर यह की।
और दी साथ ही हाली ने शहादत उसकी ।।५२।।
रही बाक़ी न फ़रीक़ैन को जाय इंकार।
चार ना चार किया यक जहती का इक़रार ।।५३।।
बढ़के फिर दोनों मिले ऐसे कि गोया थे एक।
मिलके हो जायँ कहीं जैसे कि दो दरिया एक ।।५४।।

दया और न्याय के विवाद को श्रीमती बुद्धि देवी ने कैसे अनोखे और दार्शनिक ढँग से मिटाया है। कविवर हाली ने ऐसे ही अन्य आवश्यक विषयों पर कविता करके कविता और भाषा दोनों को कृतार्थ किया है। कवि के भाव जहाँ स्वाभाविकता लिये हुए अनोखे हैं वहाँ भाषा भी सीधी सादी पर सोलह आना टकसाली है। हमारा विचार था कि इस अध्याय को लेख-विस्तार-भय से यहीं समाप्त कर दें किन्तु हाली के "मनाज़र-ये वाइज़ो शाइर" (उपदेशक और कवि के विवाद) को चखाये बिना इस स्तम्भ को बन्द कर देना अच्छा नहीं मालूम होता। अतएव उस

कविता में से पाठकों को कुछ पद्य भेंट करके इस अध्याय को समाप्त करेंगे।

उपदेशक और कवि का उर्दू और फ़ारसी साहित्य में पुराना झगड़ा चला आता है। उपदेशक अपनी दुष्ट वृत्तियों को छिपाकर सब किसी को उपदेश देने के बहाने से नीचा दिखाया करता है। खरी कहनेवाले कवियों को यह बात कब सह्य हो सकती है। वे सदा उसकी पोल खोला करते हैं। किन्तु हाली ने उस झगड़े को बहुत ही योग्यता से लिखा और तय किया है। पाठक, देखिए—

नं० ५. कल जो मैंने बिस्तरे राहत पै जाकर दम लिया।
दिल को इक वक़्त ग़मे दुनिया से फ़ुरसत का मिला॥ १॥
की तसव्वुर ने वहीं इक बज़्मे रंगीं आश्कार
मजलिसे अरबाब मानी जिसको कहना है बजा॥ २॥

हाली कहते हैं कि कल मैं अपने बिस्तरे पर चैन से पड़ा हुआ था। उस समय मेरी प्रतिभा ने एक बहुत ही बढ़िया सभा की कल्पना की। उसमें सभी विषयों के आचार्य्य मौजूद थे। मानो सब विषय ही स्वयं उस सभा में मौजूद थे। उन सबमें ख़ूब वाद विवाद हो रहा था। हर विषय का आचार्य्य अपने विषय को पुष्ट करने के लिए प्राण-पण से चेष्टा कर रहा था।

मौलवी कहते थे ग़ैरज़ इल्मे दीं सब हेच है।
फ़िलसफ़ी कहते थे हर फ़न की है हिकमत पर बिना॥ ३॥

सूफ़िये साफ़ी इधर कुछ कह रहा था ज़ेरे लब।
वाइज़े मौजिब उधर कुछ बक रहा था बरमला ॥ ४ ॥
ख़ुद फ़रोशी का ग़रज़ था हर तरफ़ बाज़ार गर्म।
साज़ गूनागूँ थे लेकिन एक थी सबकी सदा ॥ ५ ॥
शाइरे मग़रूर भी इक सम्त ख़न्दाँ ज़ेरे लब।
सुन रहा था लाफ़े अहले फ़ज़्ल और ख़ामोश था ॥ ६ ॥

उस सभा में मौलवी धर्म्म के सिवा और सब विषयों को 'अधर्म्म' प्रमाणित कर रहे थे तो दार्शनिक सभी विषयों को तर्क की कसौटी पर रगड़ना चाहते थे। दूसरी ओर वेदान्ती लोग कुछ गुनगुना रहे थे। एक तरफ़ उपदेशक महाशय आश्चर्य्य में डालनेवाली बातों को बेतरह सबके सामने बक रहे थे। मतलब यह कि आत्म-प्रशंसा का बाज़ार ख़ूब गर्म था। 'यद्यपि उस सभा में विभिन्न प्रकार के बाजे बज रहे थे किन्तु उन सबकी तान एक ही बात पर टूटती थी अर्थात् आत्म-प्रशंसा पर। कवीश्वर भी एक ओर चुप बैठे हुए इन लोगों की अभिमान और असत्य भरी बातों को सुन रहे थे।

जाके पहुँचा जब वहाँ तक दौर सोहबाये सख़ुन।
दफ़ातन मजलिस से उट्ठा और हुआ यूँ ख़ुदसिता ॥ ७ ॥
है तसर्रुफ़ में हमारे अर्स-ये दश्ते ख़याल।
कुछ नहीं मालूम जिसकी इब्तिदा और इन्तिहा ॥ ८ ॥
रहरवी में हमको चश्मो गोश पर तकिया नहीं।
हैं हमारे बालों पर अन्देश-ये फ़िक्रे रसा ॥ ९ ॥
इत्तफ़ाक़न गर किसी की मदद पर आ जायँ हम।
ख़ातिरे-दुश्मन में उसका न क़शो-उल्फ़त दें बिठा ॥१०॥

ख़ाक को चर्ख़े-बरीं पर दें अगर तर्जीह हम।
मांद हो ज़र्रे के आगे महरे-ताबाँ की ज़िया ॥११॥
गर करें हम गुलरुख़ों की बेवफ़ाई का बयाँ।
हो न बुलबुल फ़िर चमन में रूये गुल पर मुब्तिला ॥१२॥
खींच दें गर ख़ातिरे मुश्ताक़ की तस्वीरे-शौक़।
क़ैस की करनी पड़े लैला को जाकर इल्तजा ॥१३॥
हैं हमारी मदह के पीरोजवाँ उम्मेदवार।
और हमारी हिजो से थर्राते हैं शाहो गदा ॥१४॥
दी नहीं गोया शरीयत ने हमें तकलीफ़ कुछ।
जो नहीं जायज़ किसी को है वह सब हमको रवा ॥१५॥
ख़ुद सिताई जो किसी को जुज़ ख़ुदा फबती नहीं।
आके हो जाती है शाइर की ज़बाँ पै ख़ुशनुमा ॥१६॥
फ़ोहश और दुशनाम को मिलता है याँ रंगे क़बूल।
गालियां दे दे के हम सुनते हैं अक्सर मरहबा ॥१७॥

कवि के बोलने का जब समय आया तब वह एक साथ उठकर इस तरह कहने लगा। राजाओं का राज्य कितना ही बड़ा क्यों न हो फिर भी सीमाबद्ध है किन्तु हमारी कल्पना के राज्य में आदि अन्त नहीं, वह अनादि और अनन्त है। हम देखने सुनने में आँख कान का सहारा नहीं रखते। हमारी उड़ान को देखकर साधारण बुद्धि चकरा जाती है। यदि हम सौभाग्यवश किसी की प्रशंसा कर दें तो उसके शत्रुओं के हृदय में भी उसकी प्रतिष्ठा हो जाय। यदि हम धूलि-कण को आस्मान से ऊँचा प्रमाणित करने पर आ जायँ तो उसके सामने सूर्य्य की प्रभा क्षीण कर दें। यदि हम कुसुमसम कपोल-

वाली स्त्रियों की परपीड़क वृत्तियों का वर्णन करें तो फिर बुलबुल बाग़ में जाकर झाँके भी नहीं—उसका चित्त फूलों से बिल्कुल फिर जाय। यदि हम प्रेमिक के उत्कण्ठापूर्ण चित्त का चित्र खींच दें तो लैला को मजनूँ की ख़ुशामद के लिए वन में जाये बिना कल न आये। हमसे प्रशंसा सुनने के लिए सभी छोटे बड़े लालायित रहते हैं। हमारे निन्दासूचक काव्य से ग़रीब ही नहीं अमीर भी थर्राते हैं। हमारे ऊपर धर्म्मशास्त्र का भी विधिनिषेध रूप अस्त्र नहीं चल सका है। उसने भी हमारी प्रतिष्ठा की है। जो किसी को उचित नहीं वही हमारे लिए उचित है। झूँठ बोलना किसी को उचित नहीं—सबके लिए निषिद्ध है किन्तु हमारे लिए विहित है। ईश्वर के सिवा और किसी को आत्मप्रशंसा करनी उचित नहीं किन्तु हमारी ज़बान पर आकर उसकी शोभा भी बढ़ जाती है। आत्म-प्रशंसा की तो कोई बात ही नहीं, हमारी ज़बान से अश्लील बातें भी निकलकर लोगों को प्रसन्न कर देती हैं। उन्हें सुनकर वे नाराज़ नहीं होते—उलटा हमारी प्रशंसा करते हैं।

जब यह बाला ख़्वानियाँ शाइर की वाइज़ ने सुनीं।
मुस्कराया और यह फ़र्माया कि ऐ हिज़ियाँ सरा ॥१८॥
शेवा तेरा बुख़्ल फ़ुज़ूली और यह लाफ़ो गुज़ाफ़।
पेशा तेरा बाद ख़्वानी और इतना इद्दआ ॥१९॥
क्या अदब जाता रहा इनका भी तुझको ऐ सफ़ीह।
बरसरे मजलिस है तू जो इस तरह बेकारता ॥२०॥

इल्म और हिकमत के हों जिस बज़्म में दफ़्तर खुले।
किसने दी है तुझको यां इस हिर्ज़ा गोई की रज़ा ॥२१॥
ख़ुद हो तुम बेइल्म और सोहबत से अहले इल्म की।
भागते हो जैसे शैतां है अज़ां से भागता ॥२२॥
है यही बाइस कि बक उठते हो तुम बे अख़्त्यार।
जो तुम्हारे मुँह में आता है सज़ा और ना सज़ा ॥२३॥
बे हक़ीक़त हैं तेरे सारे ख़यालाते बुलन्द।
हिजो है तो बे असर और मदह है तो बेसफ़ा ॥२४॥
बाल से बारीकतर माशूक़ की तेरे कमर।
रात से तारीकतर हिज्रे सनम में दिन तेरा ॥२५॥
शहजहतमें तू करे बरपा क़यामत सात बार।
यार से अपने अगर दमभर को हो आशिक़ जुदा ॥२६॥
मज़हबे शाइर में जिसका दीने बातिल नाम है।
रास्ती और सिदक़ से बढ़कर नहीं कोई ख़ता ॥२७॥
परद-ये अर्ज़े हुनर में मांगता है भीक तू।
गर यही है शाइरी तो तुझसे बेहतर है गदा ॥२८॥

कवि की अभिमानपूर्ण बातों को सुनकर उपदेशक ने स कर कहा—'ऐ झूठे आदमी, फ़िज़ूल बातें बकना तेरा स्वभाव है और ख़ुशामद करना तेरा पेशा है—इस पर तू इतना इतराता है। रे मूर्ख, इस सभा में जो बड़े बड़े विद्वान् बैठे हैं उनके सामने तुझे अपनी झूठी बातें कहने में शर्म न आई। मालूम होता है इन महापुरुषों की भी तेरी दृष्टि में कुछ प्रतिष्ठा नहीं। जहाँ अनेक गम्भीर विषयों का विचार होता हो वहाँ तुम जैसे झूठ बोलनेवाले को किसने बोलने की आज्ञा दी है।

तू स्वयं तो मूर्ख है ही किन्तु विद्वानों के सत्सङ्ग से भी तुझे प्रेम क्या उलटा द्वेष है। इसी से तो तू निपट मूर्ख रह गया है। और मौके बेमौके जो जी में आता है बकने लगता है। जिन ऊँचे विचारों पर तू इतना गर्व करता है वे सब झूठे हैं। तेरी तारीफ़ झूठी और निन्दा प्रभावशून्य है। भला कुछ ठिकाना है तेरे माशूक़ की कमर बाल से भी बारीक है और मित्र के वियोग का दिन रात से भी अँधेरा है। तू प्रलय मचा देता है यदि कोई मनुष्य अपने मित्र से थोड़ी देर के लिए भी अलग हो जाय। तेरे मत में जिसका नाम ही झूठा मत है यदि कोई बड़ा भारी अपराध है तो सच है। अपने कौशल के पर्दे में तू सदा भीख माँगा करता है। यदि इसी का नाम कविता है तो ऐसी कविता करनेवाले से भीख माँगनेवाला क्षुद्र फ़क़ीर ही अच्छा है।

ज़हर दिल का जब कि वाइज़ ने लिया सारा उगल।
और न कोई तीर बाक़ी उसके तरकश में रहा ॥ २९ ॥

सुन के शाइर ने कहा बस ऐ खदंग अन्दाज़ बस।
है ज़बाँ तेरे दहन में या सनाने जाँ गुज़ा ॥ ३० ॥

चोट थी तेरी सख़ुन पर आ पड़ी अख़लाक पर।
तूने चाके पैरहन को ताजिगर पहुँचा दिया ॥ ३१ ॥

खेलते फिरते हैं गैदाने जहाँ में सब शिकार।
आड़ में टट्टी के लाखों और हज़ारों बरमला ॥ ३२ ॥

मैंने इन आँखों से ऐ वाइज़ लिबासे वाज़ में।
जौ फ़रोशी करते देखे हैं बहुत गन्दुमनुमा ॥ ३३ ॥

ख़ब्त है इक तुम को (कह दूँ गर बुरा मानो न तुम)।
आप हो बीमार और औरों को देते हो दवा ॥ ३४ ॥
मैं बताऊँ आपको अच्छों की क्या पहचान है।
जो हैं ख़ुद अच्छे वह औरों को नहीं कहते बुरा ॥ ३५ ॥
तर्के औला पर फ़ज़ीहत जिस क़दर करता है तू।
क़त्ले इन्साँ पर नहीं मिलती कहीं इतनी सज़ा ॥ ३६ ॥
है फ़क़त दोज़ख तेरी सरकार में जन्नत नहीं।
चूक जिससे हो गई कुछ फिर नहीं तू बख़्शता ॥ ३७ ॥
गर ख़ुदा भी वाइज़ो, होता तुम्हीं सा सख़्तगीर।
इस चमन को देखता कोई न फिर फूला फला॥३८॥

गर्म बाज़ारी इसी में अपनी बस समझे हो तुम।
लोग हों बदराह और उनके बनो तुम रहनुमा ॥ ३९ ॥
चाहते हो तुम यहाँ कसरत मुआसी की यूँहीं।
हैं अतिब्बा चाहते जिस तरह अमराज और वबा ॥ ४० ॥
यह भी कोई झूठ है हम जिसके ख़ुद हैं मौतरिफ़।
झूठ वह है जो हो पर्दे में तक़द्दुस के छुपा ॥ ४१ ॥
दावतों में सच बता जिस शौक़ से जाता है तू।
एक भी की है नमाज़ इस शौक़ से तूने अदा ॥ ४२ ॥
मदरसे कोशिश से तेरी गो बने हैं शहर शहर।
मसजिदें भी तूने बनवाई हैं अक्सर जाबजा ॥ ४३ ॥
पर यह हैरत है कि इन कामों में जो लागत लगी।
उससे दहचन्द आपके दीवानख़ाने में लगा ॥ ४४ ॥
मुजरिमों के जुर्म शायद हों न इतने ख़ौफ़नाक।
नेकियाँ तेरी हैं जैसी पुरख़तर रोज़े जज़ा ॥ ४५ ॥
गूँजता मिम्बर पै है यूँ बैठकर, गोया, कि आप।
आस्माँ से लेके उतरे हैं अभी हुक्मे ख़ुदा ॥ ४६ ॥

हात में गोया है तेरे नारो जन्नत की कलीद।
जिसने पूजा तुझको वह फ़िरदौस में दाख़िल हुआ ॥ ४७ ॥
अपनी इक उम्मत अलग सबसे बनाने के लिए।
तफ़रक़े डाले हैं दीने हक़ में तूने जाबजा ॥ ४८ ॥
जिस तरह झगड़ों के ख्वाहाँ हैं अदालत में वकील।
माँगता है तू यूँही बाहम ख़सूमत की दुआ ॥ ४९ ॥
शाइरों को बस इसी मुँह से गदा कहता है तू।
ऐ असीरे दामे नफ्स ऐ बन्द-ये हिर्सो हवा ॥ ५० ॥
कुछ गदा कहने से तेरे हम गदा होते नहीं।
वर्ना हम भी यूँ तो कह उठते हैं वाज़ों को गधा ॥ ५१ ॥
सब पै रोशन है कि हम लोगों का इक पेशा है मदह।
जैसे तुम लोगों का पेशा है यही मकरोरिया ॥ ५२ ॥
वाज़ में देते हो आख़िर दास्ताँ की चाट तुम।
रास्ती से काम जब चलता नहीं तसख़ीर का ॥ ५३ ॥
मदह में हम भी युँही करते हैं रङ्ग आमेज़ियाँ।
जब तने ममदूह पर खिलती नहीं सादी क़बा ॥ ५४ ॥
फूलो फल से सर्व को बे बहरा जब पाते हैं हम।
एक तुर्रा उसमें आज़ादी का देते हैं लगा ॥ ५५ ॥
कुतबे दौराँ उन रियाकारों को ठहराते हैं हम।
आपको भी जो सिखायें मुद्दतों मकरो दग़ा ॥ ५६ ॥
उन फ़िसूँ साज़ों को हम लिखते हैं ज़ुलनूने ज़माँ।
बैठकर मिम्बर पै जो आँखों का काजल लें उड़ा ॥ ५७ ॥

× × × × ×

चुभती और दुखती स ख़ुनवर ने यह की तक़रीर जब।
और लगे सब मुस्कराने देखकर यह माजरा ॥ ५८ ॥
दिल में वाइज़ ने पढ़ी लाहौल और समझा कि मैं।
छेड़कर एक बेअदब को मुफ़्त में रुसवा हुआ ॥ ५९ ॥

पर बज़ाहिर दाग़ यह दामन से धोने के लिए।
हँस के इक संजीदगी से और मतानत से कहा ॥ ६० ॥
हो चुकीं बातें हँसी की अब करो कुछ और ज़िक्र।
हिज़्लो इस्तहज़ा ज़ियादा हद से होता है बुरा ॥ ६१ ॥
कहिए फ़िक्रे शेर का होता है अब भी इत्तफ़ाक़।
आपने दीवाँ मुरत्तिब क्यों नहीं अब तक किया ॥ ६२ ॥
हैं हँसी की और बातें कीजिए इनसाफ़ अगर।
है ग़ज़ल में आपकी दीवाने हाफ़िज़ का मज़ा ॥ ६३ ॥
अर्ज़ की शाइर ने हज़रत का है यह सब हुस्नेज़न।
वर्ना मैं क्या और मेरा मजमूअ-ये अशआर क्या ॥ ६४ ॥
क़िबला अब वह दिन गये जो शाइरों की क़द्र थी।
शाइरी और नुक्ता परदाज़ी में है अब क्या धरा ॥ ६५ ॥
शेर अगर कहिए तो रोटी जाके किस घर खाइए।
सैकड़ों फिरते हैं शाइर तंगदस्त और बेनवा ॥ ६६ ॥
अब तो यह कहता हूँ—शेरो शाइरी को छोड़कर।
वाज़ में शागिर्द हो जाऊँ किसी उस्ताद का ॥ ६७ ॥
इस गये गुज़रे ज़माने में भी यह फ़न्ने शरीफ़।
कीमिया है कीमिया है कीमिया है कीमिया ! ॥ ६८ ॥
आप लोगों की तो इसमें रीस करनी है मुहाल।
पर हमें भी सीखने से कुछ न कुछ आ जायगा ॥ ६९ ॥
रोज़ इक सोने की चिड़िया गर न हात आई न आये।
हम गुनहगारों का पेट ऐसा नहीं है कुछ बड़ा ॥ ७० ॥
की सख़ुन परदाज़ ने वाइज़ से जब यह गुफ़्तगू।
क़हक़हों से चार सू मजलिस में इक गुल पड़ गया ॥ ७१ ॥

उपदेशकजी जब अपने दिल का बुख़ार निकाल चुके और उनके तरकश में कोई तीर बाक़ी न रहा तब कवि ने कहा कि

रे शठ, तेरे मुँह में ज़बान है या तेज़ तलवार। तू कविता के विरुद्ध बोलते बोलते मेरे और मेरे आचरण के विरुद्ध बोलने लगा। तूने दामन को फाड़ने के साथ दिल को भी फाड़ डालने का उपक्रम कर दिया! संसाररूप मैदान में सभी शिकार खेलते फिरते हैं उनमें टट्टी की आड़ में शिकार खेलनेवाले अधिक हैं और सबके सामने खेलनेवाले कम। मैंने ऐ उपदेशक, उपदेशकी का ढोंग बनाये हुए अनेक मनुष्य गोधूमाभास जौ बेचते हुए देखे हैं अर्थात् कपटाचार करते देखे हैं। एक बात कहता हूँ बुरा मत मानना। तुम स्वयं रोगी हो किन्तु दूसरों के रोग दूर करने का झूठा दावा करते हो। आप जानते हैं अच्छों की क्या पहचान है। महाशय, जो अच्छे हैं वे दूसरों को बुरा नहीं कहते। दैनिक, धार्मिक कृत्यों का त्याग करने पर जितनी हाय-तोबा तू मचाता है आदमी के मार डालने पर भी कहीं उतना दण्ड नहीं मिलता। तेरी सरकार में तो सिर्फ़ नरक ही नरक है स्वर्ग का वहाँ नाम ही नहीं है। किसी की चूक को तू क्षमा करना जानता ही नहीं। उपदेशकजी, यदि ईश्वर भी तेरे ही समान होता तो यह संसाररूप वाटिका आज जैसी फूल-फली दिखाई देती है—न दिखाई देती। तुम्हारा एक ही उद्देश है और वह यह कि लोग पापी हों और आप उपदेश देने के बहाने से उनके नेता बनें। जिस तरह हकीम, डाक्टर शहर में बीमारी चाहते हैं उसी तरह तुम भी संसार में पाप की वृद्धि चाहते हो। हम जिस झूठ को बोलते

हैं उसे ख़ुद भी झूठ समझते हैं पर आप सचाई के पर्दे में ढक-कर झूठ को बाहर निकालते हैं अतएव असली झूठ आपके हिस्से ही में आया है। सच कहना जिस उत्साह से शोमाब भोजों में सम्मिलित होते हैं उसी उत्साह से कभी जन्म में एक बार भी ईश-प्रार्थना (नमाज़) की है। इसमें सन्देह नहीं कि तेरी चेष्टा से अनेक पाठशालाएँ और मन्दिर बन गये हैं किन्तु इन सब अच्छे कामों में जितनी लागत लगी है उससे दसगुनी ज़्यादा लागत तूने अपने दीवानख़ाने के बनाने में ख़र्च की है! जिस दिन ईश्वर के सामने न्याय होगा उस दिन अपराधियों के अपराध तो शायद उतने भयानक न समझे जायँ जितनी कि तेरी कपट-मिश्रित भलाइयाँ समझी जायँगी। जिस समय तू प्लेटफ़ार्म पर खड़े होकर व्याख्यान देता है उस समय तो यही मालूम होता है तू आस्मान से अभी अभी ईश्वर की आज्ञा लेकर मर्त्यलोक में आया है। तू तो स्वर्ग का ठेकेदार है, मानो स्वर्ग की कुञ्जी तेरे ही हाथ में है। जो तुझे पूजेगा वही स्वर्ग में दाख़िल होने पावेगा। क्या ख़ूब! अपना और एक नया सम्प्रदाय बनाने के लिये तूने सच्चे मत में अनेक अनावश्यक भेद डाल दिये हैं। जिस तरह अदालत में वकील लोग झगड़ों की वृद्धि चाहते हैं उसी तरह आपस के झगड़ों की वृद्धि के लिये तू भी सदा प्रार्थी रहता है। ऐ लोभी, रे इन्द्रियदास, इसी मुँह से तू कवियों की निन्दा करता

है। तेरे भिक्षुक बनाने से हम भिक्षुक नहीं बनते। कहने को तो हम भी किसी किसी को गधा कह देते हैं। जिस तरह तुम लोगों का झूठ और कपट पेशा है उसी तरह हमारा भी दूसरों की तारीफ़ करना पेशा है। जब तुम सच्ची बातें से लोगों के मनों को आकर्षित नहीं कर सकते तब कहानियों की चाट देकर तुम भी अपने व्याख्यान को मज़ेदार बनाया करते हो। हम भी कभी कभी प्रशंसा करने में इसी तरह रङ्गत दे दिया करते हैं। सर्व का पेड़ सब जानते हैं फूल-फलहीन होता है। इसलिए हम उसे 'स्वतन्त्र' कहकर उसकी श्रीवृद्धि करते हैं। कविवर मोमिन ने सर्व की स्वतन्त्रता को किस अच्छी तरह से काटा है—

पांव तक पहुँची हैं ज़ुल्फें ख़मबख़म।
सर्व को अब बांधिए आज़ाद क्या ?॥

किन्तु हम उन्हें झूठों का सरदार कहते हैं जो आपको भी बरसों धोखे और कपट की शिक्षा दे सकें। हमारी दृष्टि में वही सबसे बड़े धूर्त हैं जो प्लेटफ़ार्म पर गरज गरजकर दूसरों का सर्वस्व हरण कर लेते हैं।

× × × × ×

कवि की इन चुभती और दुखती हुई बातों को सुनकर सभा में बैठे हुए सभी आदमी हँसने लगे। उस समय उपदेशक ने अपने मन में बहुत पछतावा किया और कहा कि मैंने इस उद्दण्ड को छेड़कर वृथा ही मुँह की खाई और बदनाम नफ़े में हुआ। किन्तु सबके सामने अपनी बात रखने

के लिए उसने (असली विषय को टालकर) हँसते हुए बड़ी शान्ति से कहा—भाई ये तो दिल्लगी की बातें थीं—एक दूसरे की बुराई हद से अधिक नहीं करनी चाहिए। अब दूसरा, काम कीजिए ? हाँ, यह तो बताइए अब भी कभी कभी काव्य-रचना होती है ? आपने अब तक अपना काव्य-संग्रह क्यों नहीं प्रकाशित किया ? हँसी की तो बात दूसरी है किन्तु सच यह है कि आपकी कविता पढ़कर हाफ़िज़ की कविता का आनन्द आ जाता है। यह सुनकर कवि ने कहा—महाशय, यह आपकी उदारता है। मैं और मेरा काव्य किस योग्य है। किन्तु महोदय, वे दिन हवा हुए जब काव्य की क़द्र थी। अब कविता करने में कुछ नहीं रक्खा है। कविता करें तो रोटी किसके घर खायँ। सैकड़ों बेचारे कवि बड़ी ही बुरी दशा में कालयापन कर रहे हैं। अब तो मेरा यह विचार है कि कविता की रागमाला को छोड़कर किसी अच्छे "महा-महोपदेशक" का चेला बन जाऊँ। महाशय, इस बुरे समय में भी आपका (उपदेशकी का) पेशा सच कहता हूँ कीमिया है कीमिया। आप जैसे "व्याख्यान-वाचस्पति उपदेशक" की बराबरी करनी तो कठिन ही नहीं असम्भव ही है किन्तु हमें भी आपकी कृपा से कुछ न कुछ आ ही जायगा। यदि हमारे हाथ कोई सोने की चिड़िया रोज़ न लगेगी तो भी ऐसा हर्ज नहीं है क्योंकि हम पापियों का पेट भी कुछ ऐसा बहुत बड़ा नहीं है। (मतलब यह कि मुफ़्त का माल हज़्म करनेवाली

आपकी सुविशाल तोंद महाशया के सामने वह अभी बिलकुल छोटा है।) उपदेशकजी से कवि ने जब ये रहस्यपूर्ण बातें कीं तब सभा के सभी सभ्य खिलखिलाकर हँस पड़े। हँसी के मारे उस समय कान पड़ी बात सुनाई न पड़ती थी।*

ऊपर की कविता में पाठकों ने देखा होगा कि हाली महोदय ने धूर्त्त उपदेशकों का कैसा अच्छा चित्र खींचा है। ऐसे समाज के घुनरूप उपदेशक हर जाति और हर धर्म्म में हैं। इससे यह मतलब नहीं कि अच्छे और सच्चे उपदेशकों का सर्वथा अभाव है। जो सच्चे उपदेशक हैं, जिनका लक्ष्य उपदेश देकर टके पैदा करना नहीं है बल्कि देश, जाति या धर्म्म की उन्नति ही जिनका प्रधान और एकमात्र उद्देश है वे सर सय्यद अहमद की तरह मुसल्मानों में, स्वनामधन्य पण्डित मदनमोहन मालवीय की तरह हिन्दुओं में और ऋषि-तुल्य गोखले की तरह हिन्दुस्तानियों में सदा सर्वदा पूजे जाते हैं और पूजे जायँगे।

---

* जिन लोगों को बीसवीं शताब्दी के आविष्कारप्राप्त व्यवसाय के पेशेवर उपदेशकों की लीलाओं का ज्ञान प्राप्त करना हो और साथ ही दो तीन घण्टे नफ़े में हँसना हो उन्हें श्रीयुक्त पण्डित जनार्दन जोशी बी० ए० (डिपुटी कलक्टर) का लिखा "गुरु घण्टाल का उपदेश" नामक निबन्ध ज़रूर पढ़ना चाहिए। शायद अभ्युदय प्रेस, प्रयाग से कोई तीन आने में मिलता है। देखने योग्य है। मुफ्त बाँटने योग्य है। किन्तु जिन लोगों का प्रधान उद्देश धन बटोरना है और जिनकी योग्यता थियेटर के ऐक्टर से किसी तरह अधिक नहीं है उनकी निन्दा जितनी अधिक हो उतना ही देश और जाति का कल्याण है।

चौथा अध्याय

हाली के मुसद्दस

हाली के दो मुसद्दस ख़ूब प्रसिद्ध हैं। उनमें से एक का नाम है मद्दोजज़्र इस्लाम अर्थात् इस्लाम का उदय और अस्त। और दूसरे का नाम है नङ्गे ख़िदमत अर्थात् द्विवेदीजी के शब्दों में "सेवावृत्तिविगर्हणा" है। पहला मुसद्दस मुसल्मानों का जातीय काव्य है। उसका उन्हें बड़ा मान है और है भी वह मान देने के योग्य। कविवर हाली ने यदि कुछ न करके केवल यह मुसद्दस ही लिख दिया होता तो भी उनकी मुसल्मान जगत् में वही प्रतिष्ठा होती जो आज है। उस मुसद्दस को लिखकर कविवर हाली मुसलमान जगत् में अमर हो गये हैं। हर एक पढ़ा-लिखा मुसल्मान हाली के मुसद्दस पर गर्व करता है और उसे गर्व करना चाहिए। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि श्रीयुक्त बाबू मैथिलीशरणगुप्त ने भी "भारत-भारती" की रचना इसी मुसद्दस के ढङ्ग पर करने की चेष्टा की है। हाली का दूसरा मुसद्दस भी बहुत ही सरस और स्वाभाविक है। उसमें सेवावृत्ति की अनोखे ढङ्ग से निन्दा की गई है। इस अध्याय में पहले इसी मुसद्दस का कुछ अंश उद्धृत करते हैं।

मुसद्दस के आरम्भ में कविवर हाली ने उस समय का चित्र खींचा है जिस समय मनुष्य ख़ूब सादगी से रहता था,

वह एक तरह से बिलकुल ही आडम्बर-शून्य था। संसार के विभिन्न व्यसनों ने उसे आवश्यकता का दास नहीं बनाया था। इसी बात का वर्णन करते हुए वे एक जगह कहते हैं—

इस क़द्र उम्रे दोरोज़ा पै न मग़रूर थे हम।
ऐशो इशरत के तिलिस्में बहुत दूर थे हम॥
किसी मेहनत से मशक़्क़त से न माज़ूर थे हम।
आप ही राज थे और आप ही मज़दूर थे हम॥
थे ग़ुलाम आप ही और आप ही आक़ा अपने।
ख़ुद ही बीमार थे और ख़ुद ही मसीहा अपने॥ १॥
ख़ुदनुमाई व ख़ुद आराई का कुछ ध्यान न था।
किब्रो पिन्दार का जारी कहीं फ़र्मान न था॥
घर में सामान न था दर पै निगहबान न था।
दिल में फ़रऊने ज़माँ बनने का अरमान न था॥
आके दुनिया में बहुत पाँव न फैलाते थे।
इक मुसाफ़िर की तरह रह के चले जाते थे॥ २॥
ख़ाक को नर्म बिछौनों से सिवा जानते थे।
रूख की छांव को हम ज़िल्ले हुमा जानते थे॥
मिल गया जो उसे इनआमे ख़ुदा जानते थे।
न बुरा जानते थे और न भला जानते थे॥
ताईते नफ़्से फ़रोमाया से आज़ाद थे हम।
साग और पात पै गुज़रान थी और शाद थे हम॥ ३॥

× × × × ×

× × × × ×

पेट के मारे कहीं सर न झुकाते हम थे।
आबरू नफ़्स की ख़ातिर न गवांते हम थे॥ ४॥

उस समय हम इस छोटी सी उम्र पर इतना अभिमान न करते थे। अनेक तरह के व्यसनों और आडम्बरों से बहुत दूर रहते थे। सभी तरह के परिश्रम हम कर सकते थे। हम ख़ुद ही राज थे और ख़ुद ही मज़दूर थे। स्वामी भी आप थे और सेवक भी स्वयं ही थे अर्थात् 'स्वयं दासास्तपस्विनः'। जब कभी बीमार पड़ते थे तो वैद्य भी हम स्वयं आप ही बनते थे अर्थात् अपने ही विचार और पथ्य से रोग का शमन कर लेते थे ॥ १ ॥

हमें उस समय अभिमान और अस्मिता ने इस तरह न घेर रक्खा था। हम बहुत ही सादा जीवन व्यतीत करते थे। 'यहाँ तक कि घर में सामान भी न रखते थे और अतएव द्वार पर द्वारवान भी। हमें ठाठ बनाने का रत्ती भर भी ध्यान न था। सच तो यह है कि हम संसार में आकर इस तरह पाँव न फैलाते थे। जिस तरह सराय में मुसाफ़िर ठहरकर चला जाता है उसी तरह हम भी संसार में कुछ दिनों ठहरकर चले जाते थे। उससे राग न करते थे ॥ २ ॥

हमारे जीवन की स्वच्छंता और सादगी का कुछ ठिकाना न था। हम साफ़ भूमि को क़ालीन से बढ़कर नर्म समझते थे, पेड़ की छाया को हुमा नामक पक्षी की छाया समझते थे। (हुमा पक्षी की जिस पर छाया पड़ जाती है वह बादशाह बन जाता है इस तरह का विश्वास फ़ारसी के कवियों और फ़ारिस के निवासियों में बहुत पुराने काल से चला

आता है) जो कुछ मिल जाता था उसी पर हम सन्तोष करते थे और ईश्वर का धन्यवाद करते थे। हम किसी चीज़ को बुरा या भला न जानते थे। जानते थे यही कि जो होता है ईश्वर की तरफ़ से अच्छा ही होता है। हम इन्द्रियों के बिलकुल दास न थे, वे ही हमारे वश में थीं। इसी लिए साग पात खाकर हम ख़ूब प्रसन्न रहते थे, ख़ूब निश्चिन्त रहते थे ॥ ३ ॥

हमें पेट भरने के लिए किसी के सामने सिर झुकाना न पड़ता था। अपनी दुष्ट वृत्तियों की ख़ातिर हमें अपनी प्रतिष्ठा न गवाँनी पड़ती थी ॥ ४ ॥

इस तरह हमारा जीवन ख़ूब सुख से कटा जाता था। अब उसमें किस तरह विक्षेप हुआ इस बात को हाली महोदय कितनी अच्छी तरह अपनी पक्की भाषा में कहते हैं—

आमदे मौसमे गुल में था अजब लुत्फ़े हवा।
आंधियों ने किये अंजाम को तूफ़ां बरपा॥
चश्मा नज़दीक था मुम्बे से तो था ऐन सफ़ा।
जितना बढ़ता गया होता गया पानी गदला॥
मिटते मिटते असरे सिद्क़ो सफ़ा कुछ न रहा।
आख़िरी दौर में तलछट के सिवा कुछ न रहा॥ ५॥
ऐ जहां ऐ रविशे ताज़ह बदलनेवाले।
नित नई चाल नई ढाल से चलनेवाले॥
मोम की तरह हर इक साँचे में ढलनेवाले।
रोज़ इक साँग नया भर के निकलनेवाले॥

आज कुछ और है कल और थी कुछ शान तेरी।
एक से एक नहीं मिलती कहीं आन तेरी ॥ ६ ॥

× × × × ×

हक़ ने शाइस्त-ये हर बाब बनाया था हमें।
एक ही दाम में फँसना न सिखाया था हमें ॥
रस्ता हर कूचओ मंज़िल का बताया था हमें।
ज़ीना हर बाम पै चढ़ने का दिखाया था हमें ॥
ऐसा कुछ बाद-ये ग़फ़लत ने किया मतवाला।
तौक़ ख़िदमत का लिया और गले में डाला ॥ ७ ॥
दरे मख़लूक़ को हम मलजाओमावा समझे।
ताईते ख़ुल्क़ को ऐज़ाज़ का तमग़ा समझे ॥
पेशओ हिर्फ़े को अजलाफ़ का शेवा समझे।
नंगे ख़िदमत को शराफ़त का तक़ाज़ा समझे ॥
ऐब गिनने लगे नज्जारियो हद्दादी को।
बेचते फिरने लगे जौहरे आज़ादी को ॥ ८ ॥
नौकरी ठहरी है ले दे के अब औक़ात अपनी।
पेशा समझे थे जिसे हो गई वह ज़ात अपनी ॥
अब न दिन अपना रहा और न रही रात अपनी।
जा पड़ी ग़ैर के हातों में हर इक बात अपनी ॥
हाथ अपने दिले आज़ाद से हम धो बैठे।
एक दौलत थी हमारी सो उसे खो बैठे ॥ ९ ॥
करते हैं क़स्द तिजारत तो गिरह में नहीं दाम।
दस्तकारी को समझते हैं कि है कारे अवाम ॥
नहीं हल जोतने में राहतो आराम का नाम।
बनते फिरते हैं इसी वास्ते इक इक के गुलाम ॥१०॥
एक आक़ा हो तो ख़िदमत का हो हक़ उसकी अदा।
एक अफ़सर हो तो हुक्म उसका कोई लाये बजा ॥

जैद की राय जुदा अमरू की तजवीज़ जुदा।
एक बन्दे को भुगतने कई पड़ते हैं ख़ुदा॥
भागो ख़िदमत से कि अच्छा नहीं अंजाम इसका।
जिसका पत्थर का कलेजा हो वह ले नाम इसका॥११॥

आती हैं नौकरों के सर पै बलाएँ अक्सर।
बे सबब उनपै गुज़रती हैं बलाएँ अक्सर॥
माननी पड़ती हैं नाकर्दा ख़ताएँ अक्सर।
सामने जाते हैं पढ़ पढ़ के दुआएँ अक्सर॥
ग़ैरत आई जिन्हें वह ठहरने पाते नहीं याँ।
जो कि आक़िल हैं कभी कान हिलाते नहीं याँ॥१२॥

अमरू करता है अगर उसका अदब और ताज़ीम।
करनी पड़ती है उसे भी कहीं झुककर तसलीम॥
जैद की झिड़कियों से गर है दिल अमरू का दो नीम।
जा के सुनता है कहीं जैद भी अलफ़ाज़े सक़ीम॥
पाजी अहमक़ उसे कहने का अगर है दस्तूर।
"डाम फूल" उसको भी सुनना कहीं पड़ता है ज़रूर॥१३॥
अपनी गर जान पै बन जाये मशक़्क़त से यहाँ।
नहीं उम्मेद कि गुज़रे किसी ख़ातिर पै गराँ॥
मुतमइन हैं कि हैं मज़दूरों का दुनिया में समाँ।
न हुआ एक तो रुकती नहीं तामीरे मकाँ॥
फिरते हैं पेट की याँ देते दुहाई लाखों॥
गर नहीं आप तो हैं आपके भाई लाखों॥१४॥

नौकरों से हैं बहायम कहीं रुतबे में सिवा।
कि नहीं ख़िदमते हमजिंस का उन पर धब्बा।
गाय हो बैल हो घोड़ा हो कि हो इसमें गधा॥
एक को एक का ताबा कहीं देखा न सुना।

किसी मख़लूक़ को रुतबा न ख़ुदा ने बख़्शा ।
जो ग़ुलामों को शरफ़ अह्ले रसा ने बख़्शा ॥१५॥
इससे बढ़कर नहीं ज़िल्लत की कोई शान यहाँ ।
कि हो हमजिंस की हमजिंस के क़ब्ज़े में इनाँ ॥
एक गल्ले में कोई भेड़ हो और कोई शबाँ ।
नस्ले आदम में कोई ढोर हो कोई इंसाँ ॥
बातवाँ ठहरे कोई, कोई तनो मन्द बने ।
एक नौकर बने और एक ख़ुदावन्द बने ॥१६॥

एक ही तुख़्म से पीलू भी हो शमशाद भी हो ।
एक ही अस्ल से ख़ुसरू भी हो फ़रहाद भी हो ॥
एक ही डार में आहू भी हो सय्याद भी हो ।
एक ही नस्ल से बन्दा भी हो आज़ाद भी हो ॥
एक ही सब्ज़ा कि जो ताज़ा भी हो ख़ुश्क भी हो ।
एक ही क़तर-ये ख़ूँ रीम भी हो मुश्क भी हो ॥१७॥
एक वह हैं कि नहीं ग़ैर के फ़र्मां बरदार ।
अपनी हर बात के हर काम के ख़ुद हैं मुख़्तार ॥
नहीं सरकार से दरबार से उनको सरोकार ।
जिस जगह बैठ गये है वहीं उनका दरबार ॥
गर तवंगर हैं तो दस बीस हैं उनके महकूम ।
वर्ना ख़ादिम हैं किसी के न किसी के मख़दूम ॥१८॥

एक वह हैं कि ज़माना करे इन्साफ़ अगर ।
और खुल जायँ कमालात भी उनके सब पर ॥
जौहरी जो हैं वह सब उनके परख लें जौहर ।
कामयाबी नहीं उनके लिए इससे बढ़कर ॥
कि सदा क़ैद रहें मुर्गे ख़ुश-इलहाँ की तरह ।
जाके बिक जायँ कहीं यूसुफ़े कनआँ की तरह ॥१९॥

रे परिवर्त्तनशोल संसार, तू सदा नई चाल ढाल पसन्द करता है। जब देखो तब तेरा ढङ्ग नया ही रहता है। तेरी दशा सदा बदलती रहती है। वह कभी एक सी नहीं रही। परिवर्त्तन तेरा स्वभाव है ॥ ६ ॥

ईश्वर ने हमें हर तरह से सभ्य बनाया था। हमें हर तरह के कौशलों का उसने ज्ञान दिया था। वह कोई मार्ग नहीं जिसका हमें भेद न सुझाया हो और कोई ऐसी उँचाई नहीं जिस पर चढ़ने का ज़ीना न बताया हो। किन्तु न मालूम कैसा अज्ञान हमारे चित्त पर छा गया कि हमने सेवा का फन्दा अपने हाथ से ही अपने गले में पहन लिया ॥ ७ ॥

हमने मनुष्य के द्वार को कल्पद्रुम समझा, मनुष्यों की सेवा को प्रतिष्ठा का कारण समझा। व्यवसाय और उद्योग धन्धों को हम मूर्खों का काम समझने लगे। हम यदि किसी को प्रतिष्ठा की बात समझे तो सेवा की अधम वृत्ति को ही समझे। बढ़ई और लुहार के काम को हम बुरा समझने लगे। मतलब यह कि अपने स्वतन्त्रता-रूप उज्ज्वल रत्न को जहाँ तहाँ बेचते फिरने लगे ॥ ८ ॥

अब तो बस नौकरी से बढ़कर अपनी औक़ात नहीं है। जिसे पहले व्यवसाय समझकर ग्रहण किया था वह अब अपनी ज़ात हो गई है। न अब दिन अपना है और न रात, अपनी हर बात दूसरे के हाथ में जा पड़ी। अब अपने

स्वतन्त्र हृदय से हम हाथ धो बैठे। अपने पास एक ही सम्पत्ति थी सो उसे भी हमने अपनी अज्ञता से खो दिया ॥ ९ ॥

अब यदि व्यवसाय करना चाहते हैं तो गिरह में दाम नहीं। दस्तकारी को सर्व साधारण का पेशा समझते हैं। हल जोतने में हमें रत्ती भर आराम दिखाई नहीं देता। इसलिए सब तरफ से विवश और निराश होकर किसी की सेवा करना ही अब अपना परम धर्म्म हो गया है ॥ १० ॥

फिर हमारा एक मालिक नहीं जो उसकी आज्ञाएँ यथा-विधि पालन करके यश की प्राप्ति करें। अनेक हाकिम हैं फिर उनकी विविध सम्मतियाँ और तदनुकूल आज्ञाएँ हैं। अब बताइए हम कैसी कठिनाई में पड़ गये हैं। हम एक हैं और कई 'ईश्वर' हैं जिनकी आज्ञाओं का पालन करना हमारा धर्म्म है। भाई इस नौकरी का भूलकर नाम न लेना। जिसका पत्थर का कलेजा हो वह इधर को मुँह करे ॥ ११ ॥

नौकरों को बीसियों अकृत कर्म्मों का भी प्रायश्चित्त करना पड़ता है। अकारण उनके सिर पर अनेक आफ़तें मँडलाया करती हैं। जब मालिक के सामने जाते हैं, ईश्वर का नाम जपते जाते हैं। जिन्हें ज़रा भी शर्म है वे इस काम में क्षण भर भी नहीं ठहरते और जिन्हें कुछ भी बुद्धि है वे कान नहीं हिलाते ॥ १२ ॥

यह मत समझो कि छोटे दर्जे के नौकरों की ही यह दशा है। नहीं, बड़ों बड़ों की भी यही हालत है। फ़र्क इतना है

कि छोटे नौकरों को प्रायः पाजी अहमक आदि शब्द सुनने पड़ते हैं और बड़ों को श्रीमुख से 'डाम फूल' जैसे भिन्न भाषा के शब्दों से वास्ता पड़ता है ॥ १३ ॥

नौकर भले ही काम करते करते मर जाय पर किसी को उसकी दशा पर दया नहीं आती क्योंकि हर एक आदमी जानता है कि संसार में नौकरों की कमी नहीं। एक नहीं दूसरा आ जायगा। एक मज़दूर के चले जाने से मकान बनना बन्द नहीं होता। जब सभी का उद्देश नौकरी है तो फिर नौकरों का अकाल क्यों पड़ने लगा है और क्यों उनकी प्रतिष्ठा होने लगी है। मालिक यह समझकर निश्चिन्त रहता है कि यहाँ लाखों आदमी पेट की ज्वाला से दुखी फिरते हैं। आप नहीं तो आपके भाई बहुत हैं ॥ १४ ॥

पशुओं से मनुष्य अपने को बहुत ऊँचा समझता है। किन्तु नौकरी ने उसे पशुओं से भी नीचा बना दिया है। पशु पशु की नौकरी या सेवा करता नहीं दिखाई देता। ईश्वर ने यह गौरव किसी को नहीं दिया जो गौरव मनुष्य को उसकी बुद्धि ने दिया अर्थात् उसे मनुष्य ही का दास बनाया ॥ १५ ॥

इससे बढ़कर लज्जा की और क्या बात होगी कि अपने ही समान प्राणियों के हाथ में अपनी लगाम हो। एक ही झुण्ड में कोई भेड़ हो और कोई भेड़िया हो। मनु की सन्तान में कोई मनुष्य हो और कोई ढोर। कोई सामर्थ्य-

वान् हो और कोई शक्तिहीन। कोई मालिक हो और कोई सेवक ॥ १६ ॥

एक ही बीज से पीलू और शमशाद के वृक्ष पैदा हों। एक ही चीज़ से खुसरू और फ़रहाद पैदा हों। एक ही शाख़ से हिरन भी पैदा हो और सय्याद भी। एक ही जाति में बद्ध भी हों और स्वतन्त्र भी, एक ही घास कहीं हरी हो और कहीं सूखी हुई। एक ही ख़ून की बूँद कहीं पीप बन जाय और कहीं मुश्क ॥ १७ ॥

एक ऐसे हैं जो किसी के नौकर नहीं हैं। अपने हर काम के ख़ुद मुख़्तार हैं, पूर्ण स्वतन्त्र हैं। उन्हें किसी सरकार या दरबार की हाज़िरी नहीं भुगतानी पड़ती। जहाँ वे बैठ जाते हैं वहीं उनका दरबार हो जाता है। यदि वे मालदार हैं तो उनके दस बीस नौकर हैं नहीं तो वे किसी के मालिक हैं न नौकर ॥ १८ ॥

एक ऐसे हैं जो बहुत गुणी हैं। यदि लोग उनके साथ न्याय करें और उनके गुणों का परिचय प्राप्त कर लें और जौहरी उनके जौहरों को परख लें तो बस उनके लिए इससे बढ़कर और कोई सफलता नहीं हो सकती कि वे सदा के लिए सेवा-बन्धन में बँध जायँ और सरे बाज़ार यूसुफ़ की तरह बिक जायँ ॥ १९ ॥

लोग जब उनको अच्छी तरह जाँच लें, उन्हें हर काम में दक्ष समझ लें, साथ ही उनके शरीर का डाक्टरी निरीक्षण

भी करा लें और उन्हें हर तरह से 'फ़िट' क़रार दे दें—यही नहीं भाग्य भगवान् भी ख़ूब अनुकूल हों तब कहीं उन्हें किसी सरकार की "ग़ुलामी" नसीब होती है ॥ २० ॥

और यदि भाग्य भगवान् अनुकूल नहीं होते तो ये सब कुछ होते हुए भी दिन रात घर घर ठोकरें खाते फिरते हैं, सबको अपने सर्टीफ़िकेट सुनाते फिरते हैं। ख़ुशामद से हर एक आदमी को पतियाते फिरते हैं। अपने मन को ज़िल्लत का ज़ायक़ा चखाते फिरते हैं। क्योंकि उनको अपना कुल जीवन ज़िल्लत में ही काटना है। अतएव वे अपने मन को पहले से ही ज़िल्लत का ज़ायक़ा चखाकर उसके योग्य बनाते फिरते हैं या अपने भावी जीवन के लिए "ट्रेंड" होते फिरते हैं ॥ २१ ॥

कोई ऐसा दफ़्तर नहीं जिसमें उनकी अर्ज़ी न पहुँची हो और कोई ऐसी कचहरी नहीं जिसमें उन्होंने चेष्टा न कर देखी हो। यदि वे पूर्व में सुनते हैं कि कोई 'जगह' ख़ाली है तो पश्चिम से टाँडा लादकर पूर्व को चल पड़ते हैं। इतनी चेष्टा करने पर भी उन्हें बरसों ख़ाली रहना पड़ता है। उन बेचारों को कोई मालिक नहीं मिलता कि जो उसके ग़ुलाम बनें ॥ २२ ॥

कभी वे भाग्य को दोष देते हैं और कभी संसार को बुरा कहते हैं। कभी सरकार को बेपरवा साबित करते हैं और कभी बेकारी से तङ्ग आकर कहते हैं—सुनते थे कि ईश्वर ने

जन्मदिन से ही सबके लिए भोजन की व्यवस्था की है पर हमारे लिए न मालूम क्यों अन्धेर हो रहा है ॥ २३ ॥

नौकरी की इस तरह सच्ची निन्दा और नौकरों की दुःख-पूर्ण अवस्था का वर्णन करके हाली महोदय इस रोग की चिकित्सा बताते हैं—

जो अपनी कठिनाइयों को और बढ़ाना नहीं चाहते उन्हें परिश्रम करने से मुँह नहीं मोड़ना चाहिए। जिन्हें सरकारी नौकरी मिल जाय वे उसे ख़ुशी से करें और नहीं सबके सामने मेहनत और मजदूरी करें। ऐसा करने से उनकी प्रतिष्ठा घटेगी नहीं उनकी शान में फ़र्क नहीं आयेगा किन्तु उनकी प्रतिष्ठा और बढ़ेगी और उनका मुख उज्ज्वल होगा। परिश्रम को छोटे आदमियों का काम समझने का भ्रम उन्हें छोड़ देना चाहिए। इस मिथ्या ज्ञान की बदौलत ही उन्हें कष्ट भोगना पड़ता है ॥ २४ ॥

कोई व्यवसाय करें, उद्योग धन्धा करें, कोई काम सीखें, कृषिकार्य्य में उन्नति करें और देशाटन करके लक्ष्मी को प्राप्त करें। सेवा-वृत्ति के लिए न किसी के सामने झुकें और न किसी को प्रणाम करें। स्वयं अपना मार्ग बनायें और अपनी सहायता आप करें ॥ २५ ॥

मनस्वी मनुष्यों ने संसार में पुरुषार्थ के कारण ही अपनी गुज़र की है। ऐसा करने में उन्हें चाहे दुःख मिले या सुख किन्तु वे कभी दूसरों के 'मुखापेक्षी' नहीं बने। उनकी

जब दृष्टि पड़ी अपने ही पुष्ट बाज़ुओं पर पड़ी। वे चाहे संसार से सुखी गये या दुखी किन्तु किसी के एहसान से लज्जित होकर न गये। दूसरों के उपकार के भार से उनकी गर्दन नीची नहीं हुई।

हाली ने अपने सर्वजन-विश्रुत दूसरे मुसद्दस में पहले अरब की उस समय की दशा का वर्णन किया है जिस समय वहाँ चारों ओर अन्धकार छाया हुआ था, मनुष्य पशुओं की तरह दिन व्यतीत करते थे। एक दूसरे का दुश्मन था। ज़रा ज़रा सी बातों पर मार काट हो जाती थी। न समाज था और न धर्म्म था। उस समय का वर्णन करके फिर मुहम्मद साहब का जन्म उनकी शिक्षा और उनके फैलाये हुए धर्म्म का वर्णन किया है। उनके उपदेश और शिक्षा के कारण अरब के वही असभ्य निवासी सुसभ्य जाति के रूप में परिणत हुए और उन्होंने संसार में ख़ूब उन्नति की। उनकी उन्नति का हाली महोदय ने बहुत अच्छा वर्णन किया है। बाद को फिर उनमें किस तरह शिथिलता आई और वे किस तरह इन्द्रिय-दास होकर कर्त्तव्य-पथ के साथ संसार के सुखों से भी पतित हुए इन विषयों पर भी हाली ने ख़ूब लिखा है। मुसल्मानों के मुल्ला, उपदेशक, सय्यद और अहम्मन्य विद्वानों की स्वार्थपरता का उन्होंने वर्णन किया है। वे लोग अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए किस तरह जातीयत्व का नाश करने लगे, इस दुःखपूर्ण विषय को हाली ने अपनी जादूभरी कविता में ख़ूब दिखाया है।

यद्यपि मुसल्मानों को सम्बोधित करके ही यह मुसद्दस लिखा गया है किन्तु उसमें कही गई बातें सभी जाति के लोगों के ऊपर और विशेष कर हिन्दुओं के ऊपर भी वैसी ही घटती हैं। अतएव उनमें से कुछ पद्य यहाँ उद्धृत करना अनुचित नहीं होगा। हिन्दुस्तान निवासी मुसल्मानों का चित्र खींच-कर हाली ने उन्नति के मार्ग को—विद्या-प्राप्ति, उद्योग-धन्धे की शिक्षा और परिश्रम के लाभों को—बताकर अपने मुसद्दस की समाप्ति की है। पहले इस मुसद्दस की समाप्ति निराशा के घोर भाव के साथ की थी किन्तु जब मुसल्मानों ने अपने जातीय कवि की कड़वी उक्तियों को बड़े चाव से सुना और उसमें दिये उपदेशों का हृदय से मान किया और मुसद्दस के बीसियों संस्करण छप गये जिनसे कि मुसद्दस की सर्वप्रियता का पूरा पता लगता था तब हाली महोदय ने एक क्रोड़पत्र लिखकर इस मुसद्दस की समाप्ति की। इसमें उन्होंने आशा-पूर्ण भावों का समावेश किया। किसी कवि के लिए उसकी कविता के मान से बढ़कर सन्तोष की बात और कोई नहीं है। हाली का यह मुसद्दस मुसल्मानों के उपदेशकों और मुल्लाओं के जिह्वाग्रभाग पर है और उसके पद्यों को पढ़कर वे लोग जहाँ अपने व्याख्यानों और धार्मिक कथाओं को सरस बनाते हैं वहाँ दूसरी ओर नवशिक्षाप्राप्त नवयुवकों के हृदय में भी उसका ऊँचा स्थान है। जिस तरह पिता पुत्र की निन्दा द्वेष के कारण नहीं बल्कि प्रेम के और उसके उपकार के कारण

करता है इसी तरह बुज़ुर्ग हाली ने अपने काव्य में मुसल्मानों की निन्दा उनके उपकार के लिए, सिर्फ़ उनकी भलाई के लिए की है। उनकी कविता में रस है, भाव है और ओज है। अपनी भूमिका में आप नम्रता प्रदर्शित करते हुए कैसा अच्छा कहते हैं—"नज़्म न पहले पसन्द के क़ाबिल थी और न अब है। मगर अलहमदुल्ला कि दर्द और सच पहले भी था और अब भी है। उम्मेद है कि दर्द फैलेगा और सच चमकेगा।" निस्सन्देह हाली के मुसद्दस ने मुसल्मानों के दिलों में जाति की अवस्था के ज्ञान का दर्द पैदा किया और सच चमकाया अब उसके कुछ पद्य सुन लीजिए। मुसद्दस का आरम्भ इस तरह है—

किसी ने यह बुक़रात से जाके पूछा।
मरज़ तेरे नज़दीक मोहलक हैं क्या क्या॥
कहा—"दुख जहाँ में नहीं कोई ऐसा।
कि जिसकी दवा हक ने की हो न पैदा॥
मगर वह मरज़ जिसको आसान समझें।
कहे जो तबीब उसको हिज़ियान समझें॥ १ ॥

सबब या अलामत गर उनको सुझायें।
तो तशख़ीस में सौ निकालें खताएं॥
दवा और परहेज़ से जी चुरायें।
युँही रफ्ता रफ्ता मरज़ को बढ़ायें॥
तबीबों से [illegible] न मानूस हों वह।
यहाँ तक कि जीने से मायूस हों वह॥ २ ॥

यही हाल दुनिया में उस क़ौम का है।
भँवर में जहाज़ आके जिसका घिरा है॥
कनारा है दूर और तूफ़ाँ बपा है।
गुमाँ है यह हरदम कि अब डूबता है॥
नहीं लेते करवट मगर अहले कश्ती।
पड़े सोते हैं बेख़बर अहले कश्ती॥ ३॥
घटा सरपै अदबार की छा रही है।
फ़लाकत समाँ अपना दिखला रही है॥
नहूसत पसोपेश मँडला रही है।
चपो रास्त से यह सदा आ रही है॥
कि कल कौन थे आज क्या हो गये तुम।
अभी जागते थे अभी सो गये तुम॥ ४॥

मुसल्मानों के पैग़म्बर मुहम्मद साहिब की शिक्षा का वर्णन करते हुए आप एक स्थान पर कहते हैं—

बनाना न तुरबत को मेरी सनम तुम।
न करना मेरी क़ब्र पर सर को ख़म तुम॥
नहीं बन्दा होने में कुछ मुझसे कम तुम।
कि बेचारगी में बराबर हैं हम तुम॥
मुझे दी है हक़ ने बस इतनी बज़ुरगी।
कि बन्दा भी हूँ उसका और एलची भी॥ ५॥

मुहम्मद साहब की शिक्षा से अरब-निवासियों ने एक जाति बनाकर फिर जिस तरह तरक्की की उसका विशद वर्णन करके फिर वहाँ के क्रमिक पतन का उन्होंने वर्णन किया है। आपने लिखा है कि मुसल्मानों का जो जातीय बेड़ा सात

समुद्रों का सफ़र तै कर आया वह गङ्गा के दहाने में आकर डूब गया। यहाँ की वायु के एक थपेड़े ने ही उसका काम तमाम कर दिया। आप लिखते हैं--

वह दीने हजाज़ी का बेबाक बेड़ा।
निशाँ जिसका अक़साये आलम में पहुँचा॥
मज़ाहम हुआ कोई ख़तरा न जिसका।
न अम्माँ में ठिठका न कुलज़ुम में झिझका॥
किये तै सफ़र जिसने सातों समन्दर।
वह डूबा दहाने में गंगा के आकर!॥

फिर आप हिन्दुस्तान के मुसल्मानों की अधोगति का वर्णन करते हैं। हिन्दू भी अपने पुरखाओं के आदर्श से बहुत कुछ गिरे हुए हैं—मुसल्मानों से भी अधिक गिरे हुए हैं। अतएव हाली का यह वर्णन हिन्दू मुसल्मान दोनों पर एक सा लागू होता है। आप लिखते हैं—

वह मिल्लत कि गर्दू पै जिसका क़दम था।
हर इक खूँट में जिसका बरपा अलम था॥
वह फ़िर्क़ा जो आफ़ाक़ में मोहतरिम था।
वह उम्मत लक़ब जिसका खैरुल उमम था॥
निशाँ उसका बाक़ी है सिर्फ़ इस क़दर याँ।
कि गिनते हैं अपने को हम भी मुसल्माँ॥ ६॥
वगर्ना हमारी रगों में लहू में।
हमारे इरादों में और जुस्तजू में॥
दिलों में ख़्यालों में और गुफ़्तगू में।
तबीयत में फ़ितरत में आदत में खूँ में॥

नहीं कोई ज़र्रा नजाबत का बाक़ी।
अगर हो किसी में तो है इत्तफ़ाक़ी॥ ७॥

हमारी हर इक बात में सिफ़लापन है।
कर्मीनों से बदतर हमारा चलन है॥
लगा नामे आबा को हमसे गहन है।
हमारा क़दम नंगे अहले वतन है॥
बुज़ुर्गों की तौक़ीर खोई है हमने।
अरब की शराफ़त डुबोई है हमने॥ ८॥

न क़ौमों में इज़्ज़त न जलसों में वक़अत।
न अपनों से उल्फ़त न ग़ैरों से मिल्लत॥
मिज़ाजों में सुस्ती दिमाग़ों में नख़वत।
ख़यालों में पस्ती कमालों से नफ़रत॥
अदावत निहाँ दोस्ती आश्कारा।
ग़रज़ की तवाज़ह ग़रज़ की मुदारा॥ ९॥

× × × × ×

गडरिये का वह हुक्मबरदार कुत्ता।
कि भेड़ों की हरदम है रखवाल रखता॥
जो रेवड़ में होता है पत्ते का खड़का।
तो वह शेर की तरह फिरता है बफरा॥
ग़र इंसाफ़ कीजे तो है हमसे बेहतर।
कि ग़ाफ़िल नहीं फ़र्ज़ से अपने दमभर॥ १०

बिगाड़े हैं गर्दिश ने जो ख़ान्दानी।
नहीं जानते बस कि रोटी कमानी॥
दिलों में है वह यक क़लम सुबुक अफ़शानी।
कि कीजे बसर माँगकर ज़िन्दगानी॥

जहाँ क़द्रदानों का हैं खोज पाते।
पहुँचते हैं वाँ माँगते और खाते॥ ११ ॥
कहीं बाप दादा का हैं नाम लेते।
कहीं रूशनासी से हैं काम लेते॥
कहीं झूठे वादों पै हैं वाम लेते।
युहीं है वे दे दे के दम दाम लेते॥
बुज़ुर्गों के नाज़ाँ है जिस नाम पर वह।
उसे बेचते फिरते हैं दर बदर वह॥ १२ ॥

नहीं माँगने का तरीक़ एक ही याँ।
गदाई की हैं सूरतें नित नई याँ॥
नहीं हस्र कँगलों पै गदियागरी याँ।
कोई दे तो मँगतों की है क्या कमी याँ॥
बहुत हाथ फैलाये जेरे रदा है।
छुपे उजले कपड़ों में अक्सर गदा है॥ १३ ॥

बहुत आपको कह के मस्जिद के बानी।
बहुत बन के खुद सय्यदे खानदानी॥
बहुत सीखकर नोह-ये सोज़ख्वानी।
बहुत मदह में करके रंगीं बयानी॥
बहुत आस्तानों के खुद्दाम बनकर।
पड़े माँगते खाते फिरते हैं दर दर॥ १४ ॥

मशक़्क़त को मेहनत को जो आर समझें।
हुनर और पेशे को जो ख़्वार समझें॥
तिजारत को, खेती को दुश्वार समझें।
फ़िरंगी के नैसे को मुरदार समझें॥
तनआसानियाँ चाहें और आबरू भी।
वह क़ौम आज डूबेगी गर कल न डूबी॥ १५ ॥

साधारण मुसलमानों की अधोगति का वर्णन करके हाली महोदय अमीरों की दशा का चित्र खींचते हैं—

अमीरों का आलम न पूछो कि क्या है।
ख़मीर उनका और उनकी तीनत जुदा है॥
सज़ावार हैं उनको जो ना सज़ा है।
रवा है उन्हें सबको जो नारवा है॥
शरीयत हुई है निको नाम उनसे।
बहुत फ़ख़ करता है इस्लाम उनसे॥ १६॥
हर इक बोल पर उनके मजलिस फ़िदा है।
हर इक बात पर वां दुरुस्त और बजा है॥
न गुफ़तार में उनके कोई ख़ता है।
न किरदार उनका कोई ना सज़ा है॥
वह जो कुछ कि हैं कह सके कौन उनको।
बनाया नदीमों ने फ़रऊन उनको॥ १७॥
कमर बस्ता हैं लोग ख़िदमत में उनकी।
गुलो लाला रहते हैं सोहबत में उनकी॥
नफ़ासत भरी है तबीयत में उनकी।
नज़ाकत सो दाख़िल है आदत में उनकी॥
दवाओं में मुश्क उनकी उठता है ढेरों।
वह पोशाक में इत्र मलते हैं सेरों॥ १८॥

े, यहाँ के रईसों की विलास-प्रियता का वर्णन
ाविवर हाली योरप के देशभक्त पुरुषों का वर्णन

अमीरों की दौलत ग़रीबों की हिम्मत।
अदीबों की इंशा हकीमों की [illegible]॥

फ़क़ीहों के ख़ुतबे शुजाओं की जुरअत ।
सिपाही के हथियार शाहों की ताक़त ॥
दिलों की उमेदें उमंगों की ख़ुशियाँ ।
सब अहले वतन और वतन पर हैं क़ुरबाँ ॥ १९ ॥

इसके बाद कविवर हाली अहम्मन्ये मुल्लाओं का वर्णन करते हैं। हमारे यहाँ के पुराने ढर्रे के पण्डित भी इसी ढङ्ग के हैं। संस्कृत भाषण में व्याकरण की ग़लतियाँ पकड़ने और मूल विषय जिस पर कि बातचीत हो रही हो उसे दूर छोड़ देने में वे भी अपना जोड़ नहीं रखते। वे धर्म्म-विषयक शङ्का का समाधान नहीं करते। किसी ने उनसे धर्म्म के विषय में शङ्का की नहीं और पण्डित महाशय ने नास्तिक और पाखण्ड जैसे बढ़िया शब्दों से उसका स्वागत किया नहीं।

कोई मसअला पूछने उनसे जाये ।
तो गर्दन पै बारे गराँ लेके आये ॥
अगर बदनसीबी से शक उसमें लाये ।
तो क़तई ख़िताब अहले दोज़ख़ का पाये ॥
अगर ऐतराज़ उसकी निकला ज़ुबाँ से ।
तो आना सलामत है दुश्वार वां से ॥ २० ॥
कभी वह गले की रगें हैं फुलाते ।
कभी झाग पर झाग मुँह पर हैं लाते ॥
कभी ख़ूक और सग हैं उसको बनाते ।
कभी मारने को असा हैं उठाते ॥
सितूँ (बचमे बदतूर) हैं आप दीं के ।
नमूना ख़ुलके रसूले अमीं के ॥ २१ ॥

अब इन विद्यादिग्गजों की लियाकत का हाल सुनिए—

वह जब कर चुके ख़त्म तहसीले हिकमत ।
बँधी सर पै दस्तार इल्मो फ़ज़ीलत ॥
अगर रखते हैं कुछ तबीअत में जौदत ।
तो है उनकी सबसे बड़ी यह लियाक़त ॥
कि गर दिन को वह रात कह दें ज़बाँ से ।
तो मनवा के छोड़ें उसे इक जहाँ से ॥ २२ ॥
सिवा इसके जो आये उसको पढ़ावें ।
उन्हें जो कुछ आता है उसको बतावें ॥
वह सीखी हैं जो बोलियां सब सिखावें ।
मियाँ मिट्ठू अपना सा उसको बनावें ॥
यह ले देके है इल्म का उनके हासिल ।
इसी पर है फ़ख़ उनको बेनुल अमासिल ॥ २३ ॥

इसके बाद आप पुराने पत्रों को लौटनेवाले हमारे यहाँ के वैद्यराजों के छोटे भाई हकीमों का वर्णन करते हैं—

वह तिब जिसपै ग़श हैं हमारे अतिब्बा ।
समझते हैं जिसको बएजाज़ मसीहा ॥
बताने में है बुख़्ल जिसके बहुत सा ।
जिसे ऐब की तरह करते हैं इख़फ़ा ॥
फ़क़त चन्द नुस्ख़ों का है वह सफ़ीना ।
चले आये हैं जो कि सीना बसीना ॥
न उनको नबातात से आगही है ।
न असला ख़बर मादनीयात की है ॥
न तशरीह कि लै किसी पर हुई है ।
न इल्मे तबीई न केमिया ही है ॥

न पानी का इल्म और न इल्मे हवा है।
मरीज़ों का उनके निगहबाँ ख़ुदा है॥ २५॥
न 'क़ानून' में उनके कोई ख़ता है।
न 'मख़ज़न' में अंगुश्त रखने की जा है॥
सदीदी में लिक्खा है जो कुछ बजा है।
नफ़ीसी के हर क़ौल पर जाँ फ़िदा है॥
सलफ़ लिख गये जो क़यास और गुमाँ से।
सहीफ़े हैं उतरे हुए आस्माँ से॥ २६॥

'माधवनिदान' और 'वाग्भट्ट' की दुहाई देनेवाले नव्य तन्त्र-विहीन वैद्यों पर ऊपर लिखी पङ्क्तियाँ क्या 'फ़िट' नहीं होतीं? इसके बाद बरसात में मेंढकों की तरह उर्दू में (ईश्वर के कोप से हिन्दी में उससे भी ज़्यादा और भद्दे नित्य नये) बढ़नेवाले कवियों को लक्ष्य करके हाली कहते हैं—

वह शेर और क़सायद का नापाक दफ़्तर।
अ़फ़ूनत में संडास से जो है बदतर॥
ज़मीं जिससे है ज़लज़ले में बराबर।
मलक जिससे शर्माते हैं आस्माँ पर॥
हुआ इल्मो दीं जिससे ताराज सारा।
वह इल्मों में इल्मे अदब है हमारा॥ २७॥
बुरा शेर कहने की गर कुछ सज़ा है।
अबस झूठ बकना अगर नारवा है॥
तो वह महकमा जिसका क़ाज़ी ख़ुदा है।
मुक़र्रिर जहाँ नेको बद की जज़ा है॥
गुनहगार वाँ छूट जायेंगे सारे।
जहन्नुम को भर देंगे शाइर हमारे॥ २८॥

ज़माने में जितने .कुली और नफ़र हैं।
कमाई से अपनी वह सब बहरे वर हैं॥
गवैये अमीरों के नूरे नज़र हैं।
डफ़ाली भी ले आते कुछ मांगकर हैं॥
मगर इस तपेदिक़ में जो मुब्तला हैं।
.खुदा जाने वह किस मरज़ की दवा हैं॥ २६॥
जो सक्के न हों जी से जायें गुज़र सब।
हो मैला जहाँ गुम हों धोबी अगर सब॥
वने दम पै गर शहर छोड़ें नफ़र सब।
जो टुर जायँ मेहतर तो गन्दे हों घर सब॥
पै कर जायँ हिजरत जो शाइर हमारे।
कहें मिलके 'खस कम जहाँ पाक' सारे॥ ३०॥

अन्त में ब्रिटिश राज्य के कारण मिली हुई शान्ति और खुले हुए उन्नति के अनेक मार्गों का वर्णन और उन पर चलने के लिए अपने भाइयों से प्रार्थना करके कविवर हाली मुसद्दस के पूर्वार्द्ध को समाप्त करते हैं। आप कहते हैं—

खुली हैं सफ़र और तिजारत की राहें।
नहीं बन्द सनअत की हिर्फ़त की राहें॥
जो रोशन हैं तहसीले हिकमत की राहें।
तो हमवार हैं कस्बो दौलत की राहें॥
न घर में ग़नीम और न दुश्मन का खटका।
न बाहर हैं क़ज़्ज़ाको रहज़न का खटका॥ ३१॥
महीनों के कटते हैं रस्ते पलों में।
घरों से सिवा चैन है [illegible] में॥

हर इक गोशा गुलज़ार है जंगलों में।
शबो रोज़ है ऐमनी क़ाफ़लों में॥
सफ़र जो कभी था नमूना सक़र का।
वसीला है वह अब सरासर ज़फ़र का॥ ३२॥
करो क़द्र इस अम्नो आज़ादगी की।
कि है साफ़ हर सम्त राहे तरक्क़ी॥
हर इक राहरौ का ज़माना है साथी॥
यह हर सू से आवाज़ पैहम है आती॥
कि दुश्मन का खटका न रहज़न का डर है।
निकल जाओ रस्ता अभी बेख़तर है॥ ३३॥
न बदख़्वाह समझो बस अब यावरों को।
लुटेरे न ठहराओ तुम रहबरों को॥
दो इल्ज़ाम पीछे नसीहत गरों को।
टटोलो ज़रा पहले अपने घरों को॥
कि खाली हैं या पुर ज़ख़ीरे तुम्हारे।
बुरे हैं कि अच्छे वतीरे तुम्हारे॥ ३४॥

उत्तरार्द्ध

इस तरह अधोगति का वर्णन करके कविवर हाली महोदय जाति की उन्नति के साधन बताते हुए अपनी कविता और अपने आपको धन्य करते हैं। सबसे पहले आप आशा का अभिनन्दन करते हैं—

बस ऐ नाउम्मेदी न यूँ दिल बुझा तू।
झलक [illegible] अपनी आख़िर दिखा तू॥

ख़ुदा ना उमेदों को ढारस बँधा तू।
फ़िसुर्दा दिलों के दिल आख़िर बढ़ा तू॥
तेरे दम से मुर्दों में जानें पड़ी हैं।
जली खेतियाँ तूने सरसब्ज़ की हैं॥ ३५॥

इसके बाद आप उन महापुरुषों का ज़िक्र करते हैं जिनके कारण वह जाति अब भी जाति कहलाने योग्य है—

बहुत हैं अभी जिनमें ग़ैरत है बाक़ी।
दिलेरी नहीं पर हमैयत है बाक़ी॥
फ़क़ीरी में भी बू ये सरवत है बाक़ी।
तिहीदस्त हैं पर मुरव्वत है बाक़ी॥
मिटे पर भी पिन्दारे हस्ती वही है।
मकाँ गर्म है आग गो बुझ गई है॥ ३६॥
समझते हैं इज़्ज़त को दौलत से बेहतर।
फ़क़ीरी को ज़िल्लत की शोहरत से बेहतर॥
गलीमे क़नाअत को सरवत से बेहतर।
उन्हें मौत है बारे मिन्नत से बेहतर॥
सर उनका नहीं दर बदर झुकनेवाला।
वह ख़ुद पस्त हैं पर निगाहें हैं बाला॥ ३७॥

बुद्धिमानों के विषय में आप कहते हैं—

पिघलते हैं साँचे में ढलने की ख़ातिर।
लगाते हैं ग़ोता उछलने की ख़ातिर॥
ठहरते हैं दम लेके चलने की ख़ातिर।
वह खाते हैं ठोकर सम्हलने की ख़ातिर॥
सबब को मरज़ से समझते हैं पहले।
उलझते हैं पीछे सुलझते हैं पहले॥ ३८॥

अब ज़रा आलसियों की तारीफ़ भी सुन लीजिए—

बनीनोअ में दो तरह के हैं इन्साँ।
तफ़ावुत है हालत में जिनकी नुमायाँ॥
कुछ इनमें हैं राहत तलब और तनआसाँ।
बदन के निगहबान बिस्तर के दरबाँ॥
न मेहनत पै मायल न कुदरत के कायल।
समझते हैं तिनके को रस्ते में हायल ॥ ३९ ॥

न हिम्मत कि मेहनत की सख्ती उठायें।
न जुरअत कि खतरों के मैदाँ में आयें॥
न ग़ैरत कि ज़िल्लत से पहलू बचायें।
न इबरत कि दुनिया की समझें अदायें॥
न कल फ़िक्र था यह कि हैं इसके फल क्या।
न है आज पर्वा कि होना है कल क्या॥ ४० ॥

नहीं करते खेती में वह जाँ-फ़िशानी।
न हल जोतते हैं न देते हैं पानी॥
पै जब यास करती है दिल पर गरानी।
तो कहते हैं हक़ की है ना मेहरबानी॥
नहीं लेते कुछ काम तदबीर से वह।
सदा लड़ते रहते हैं तक़दीर से वह॥ ४१ ॥

कर्म्मवीर पुरुषों की तारीफ़ के भी दो पद्य सुन लीजिए—

न राहत तलब हैं न मोहलत तलब वह।
लगे रहते हैं काम में रोज़ो शब वह॥
नहीं लेते दम एक दम बेसबब वह।
बहुत जाग लेते हैं सोते हैं तब वह॥
वह थकते हैं और चैन पाती है दुनिया।
कमाते हैं वह और खाती है दुनिया॥ ४२ ॥

खपाते हैं कोशिश में ताबो तवाँ को।
घुलाते हैं मेहनत में जिस्मे रवाँ को॥
समझते नहीं इसमें जाँ अपनी जाँ को।
वह मर मर के रखते हैं ज़िन्दा जहाँ को॥
बस इस तरह जीना इबादत है उनकी।
और इस धुन में मरना शहादत है उनकी॥ ४३॥

आत्मावलम्बन पर आपकी एक उक्ति सुनिए—

बशर को है लाज़िम कि हिम्मत न हारे।
जहाँ तक हो काम आप अपने सँवारे॥
ख़ुदा के सिवा छोड़ दे सब सहारे।
कि हैं आरज़ी ज़ोर, कमज़ोर सारे॥
अड़े वक्त तुम दायें बायें न झाँको।
सदा अपनी गाड़ी को गर आप हाँको॥ ४४॥

हाली महोदय भगवती सरस्वती का गुणगान इन शब्दों में करते हैं—

सुनी है ग़रीबों की फ़रियाद इसी ने।
किया है ग़ुलामी को बरबाद इसी ने॥
रि पब्लिक की डाली है बुनियाद इसी ने।
बनाया है पब्लिक को आज़ाद इसी ने॥
मुक़ैयद भी करती है और यह रिहा भी।
बनाती है आज़ाद भी बावफ़ा भी॥ ४५॥

देश की दुर्दशा का वर्णन हाली नीचे लिखे दर्दभरे पद्यों में करते हैं—

न चलते हैं (याँ) काम कारीगरों के।
न बरकत है पेशे में पेशेवरों के॥

बिगड़ने लगे खेल सौदागरों के।
हुए बन्द दर्वाज़े अक्सर घरों के॥
कमाते थे दौलत जो दिन रात बैठे।
वह हैं अब धरे हाथ पर हाथ बैठे॥ ४६ ॥

अगर इक पहनने को टोपी बनायें।
तो कपड़ा वह इक और दुनिया से लायें॥
जो सीने को वह एक सूई मँगायें।
तो मशरिक़ से मग़रिब में लेने को जायें॥
हर इक शै में ग़ैरों के मोहताज हैं वह।
मेकेनिक्स की रद में ताराज हैं वह॥ ४७ ॥

न पास इनके चादर न बिस्तर है घर का।
न बरतन हैं घर के न ज़ेवर है घर का॥
न चाक़ू न कैंची न नश्तर है घर का।
सुराही है घर की न साग़र है घर का॥
कँवल मजलिसों में क़लम दफ़्तरों में।
असासा है सब आरियत का घरों में॥ ४८ ॥

समाज-शास्त्र का महत्त्व हाली महोदय किस अच्छी तरह से एक ही पद्य में समझाते हैं—

जमाअत की इज़्ज़त में है सबकी इज़्ज़त।
जमाअत की ज़िल्लत में है सबकी ज़िल्लत॥
रही है न हरगिज़ रहेगी सलामत।
न शख़्सी बज़ुर्गी न शख़्सी हुकूमत॥
वही शाख़ फूलेगी और याँ फलेगी।
हरी होगी जड़ इस गुलिस्ताँ में जिसकी॥ ४९ ॥

अपने सुप्रसिद्ध मुसद्दस को आप इस प्रार्थना के साथ समाप्त करते हैं—

इन्हें कल की फ़िक्र आज करनी सिखा दे।
ज़रा इनकी आँखों से पर्दा उठा दे॥
कर्मीगाह बाज़ी ये दौराँ दिखा दे।
जो होना है कल आज उनको सुझा दे॥
छूतें पाट लें ताकि बाराँ से पहले।
सफ़ीना बना रक्खें तूफ़ाँ से पहले॥ ९० ॥

महाकवि हाली ने अपने मुसद्दस को जैसा कि चाहिए था बहुत ही सरल, सरस और टकसाली भाषा में लिखा है। उसे लिखकर उन्हें अपना अगाध पाण्डित्य दिखाने का ध्यान न था बल्कि उन्हें अपने भाव जाति तक पहुँचाने का ही ख़याल था। केवल इसी भाव से प्रेरित होकर उन्होंने इस मुसद्दस को लिखा था। हमने इस मुसद्दस में आये प्रत्येक कठिन शब्द का अर्थ अन्त में यथास्थान दे दिया है। प्रत्येक पद्य ख़ूब साफ़ है इसी लिए उसका आशय हिन्दी में लिखना अनावश्यक समझकर छोड़ दिया है।

इस मुसद्दस को पढ़कर मुसलमानों के उद्धारकर्ता स्वनामधन्य सर सैयद अहमदख़ाँ ने जो पत्र महाकवि हाली को लिखा था उसका कुछ अंश नीचे उद्धृत किया जाता है। उसे पढ़कर पाठक समझ सकेंगे कि हाली के मुसद्दस का सर सैयद पर क्या प्रभाव हुआ था। सर सैयद के पत्र से पाठक

जहाँ मुसद्दस की महत्ता का अनुभव करेंगे वहाँ सर सैयद की सरल पर भावमयी भाषा का भी आस्वादन कर सकेंगे। सर सैयद लिखते हैं—

"* पाँच जिल्द मुसद्दस पहुँचे। जिस वक़्त हाथ में आई जब तक ख़त्म न हुई हाथ से न छूटी और जब ख़त्म हुई तब अफ़सोस हुआ कि क्यों ख़त्म हो गई। × × किस सफ़ाई और ख़ूबी और रवानी से यह नज़्म तहरीर हुई है—बयान से बाहर है। × × मेरी निस्बत जो इशारा उस नज़्म में है उसका शुक्र करता हूँ और आपकी मुहब्बत का असर समझता हूँ। जब ख़ुदा (मुझसे) पूछेगा कि तू क्या लाया, मैं कहूँगा कि हाली से मुसद्दस लिखवा लाया हूँ और कुछ नहीं। ख़ुदा आपको जज़ाये ख़ैर दे और क़ौम को इससे फ़ायदा बख़्शे। × ×

पार्क होटल, शिमला। } आपका अहसानमन्द ताबेदार
१०-६-१८७९। } सैयद अहमद।"

शब्दार्थ-माला

ग़ज़ल नं० १ कामिल = पूर्ण ।
अज़ल = सृष्टि का आरम्भ ।
अबद = प्रलय ।
आरिफ़ = भक्त ।
मुनकर = नास्तिक ।
रोब = आतङ्क ।
जमाल = शोभा ।
मुहाल = मुश्किल ।
अज़ीज़ = प्रिय ।

" नं० ३ वीरां = नष्ट ।
मुज़दा = हर्ष-समाचार ।
सबा = पुरवा हवा ।
शाफ़ी = शान्ति-वर्द्धक ।

" नं० ४ हिर्स = लालच ।
गुनाह = पाप ।
वहशी = पागल ।
कुदरत = प्रकृति ।

" नं० ५ शब = रात ।
अय्यार = चालाक ।
ताअत = सेवा ।

ग़ज़ल नं० ६ निकोनाम = नेकनाम
इनआम = पुरस्कार ।

" नं० ७ सनां = तलवार ।

" नं० ६ उम्मत = सम्प्रदाय ।
फ़कीर = विद्वान् ।
ममनूं = अनुगृहीत ।

" नं० ११ माबूद = उपास्य ।
ज़ुहद = फ़कीरी ।
इत्तक़ा = त्याग ।
रिंद = मस्त ।
सूफ़ी = वेदान्ती ।
नगहत = सुगन्धि ।
मै = शराब ।
दुई = द्वैत ।
सफ़ा = पवित्रता ।

" नं० १२ ताब = शक्ति ।
ज़ब्त = सहन ।
शोरिशे-पिनहां = आन्तरिक अशान्ति ।
असीर = क़ैदी ।
हल्क़ा = पेच ।
ज़ियां = हानि ।

" नं० १३ अदना = नीच ।

ग़ज़ल नं० १३ आला = उच्च ।
वाक़आते-दहर = सांसारिक घटना ।
गोयाई = वाग्मिता ।
,, नं० १४ मुसव्वर = चित्रकार ।
,, नं० १६ वारिस = उत्तराधिकारी ।
फ़ातहा = कुरआन का भाग विशेष ।
,, नं० २१ नुक्ताचीं = समालोचक ।
,, नं० २४ अफ़ो = क्षमा ।
,, नं० २५ मदह = प्रशंसा ।
मुख्तसर = संक्षिप्त ।
नासह = शिक्षक ।
हज़र = त्याग ।
तहसीं = प्रशंसा ।
हज़रत = महाशय ।
,, नं० २७ शबिस्तां = रात्रि का निवास-स्थान ।
,, नं० ३२ मुमसिक = कञ्जूस ।
,, नं० ३५ आलूदा = पापी ।
,, नं० ३७ ज़श्तखूई = दुष्टता ।
,, नं० ३६ ग़ीबत = परोक्ष ।
,, नं० ४० जीस्त = जीवन ।
,, नं० ४७ ख़िस्सत = कञ्जूसी ।
,, नं० ४८ महरम = अभिज्ञ ।

ग़ज़ल नं० ४८ असरार = रहस्य ।
निशात = प्रसन्नता ।
आफ़ियत = आरोग्यता ।
शहीद = जो ईश्वर के लिए आत्म-समर्पण करे ।
ख़ञ्जर = तलवार ।
,, नं० ५५ नफ्स = मन ।
,, नं० ५६ फ़राग़त = निश्चिन्तता ।
तवक्क़ै = आशा ।
,, नं० ५७ खुल्द = स्वर्ग ।
,, नं० ६० अश्क = आंसू ।
,, नं० ६३ क़ासिद = पत्रवाहक ।

रुबाइयाँ

नं० ४ मशग़ला = काम ।
नं० ५ बशर = मनुष्य ।
ग़रूर = अभिमान ।
नं० ६ जुहल = मूर्खता ।
नं० २० नज़्मे-आलम = सांसारिक प्रबन्ध ।

फुटकर कवितायें

नं० १ दिलगुदाज़ = मनोहर ।
मुग़तनम = पर्य्याप्त ।
नं० २ रिआन = आरम्भ ।
नं० ४ आक़ा = मालिक ।

नं० ४ सख़्तगीर = कठोर ।
सिला = पुरस्कार ।
अङ्गबीं = शहद ।
मार = सांप ।

नं० ५ मुआश = रोज़ी ।
मुसल्लत = अधिकृत ।
इबलही = मूर्खता ।

नं० ६ रज़ा = इच्छा !

नं० ८ उनवां = ढङ्ग ।
मोअर्रा = विभूषित ।
मुनफ़इल = लज्जित ।
सना = प्रशंसा ।
क़ाना = सन्तुष्ट ।

नं० १० मुक़न्निन = क़ानून बनानेवाला ।

नं० ११ ख़िरदमन्द = बुद्धिमान् ।

नं० १२ मुनइम = मालदार, सम्पत्तिमान् ।

नं० १३ ताख़ीर = देर ।

नं० १५ गदा = फ़क़ीर ।
ज़रीफ़ = हँसोड़ ।
सग़ीर-कबीर = छोटे-बड़े ।
ज़वाल पज़ीर = पतनोन्मुख ।

नं० १७ गज़न्द = दुःख ।

नं० १७ अशरफुल मख़लूक़ = सर्वश्रेष्ठ प्राणी (मनुष्य) ।

प्राकृतिक कविताएँ

नं० १ तपिश = गर्मी ।
कोहसार = पहाड़ ।
रेग = रेता ।
सहरा = जङ्गल ।
रूदबार = नहर ।
अफ़लाक = आस्मान ।
बाद = हवा ।
समूम = लू, गर्म हवा ।
दरूनी = भीतरी ।
तौर = ढङ्ग ।
जन्नत = स्वर्ग ।
ग़ुस्ल = स्नान ।
ख़िलअत = पोशाक ।
मामूर = नियुक्त ।
संगोशजर = पत्थर और वृक्ष ।
जमादात = जड़ । पत्थर आदि ।
मख़फ़ी = गुप्त ।
ज़र्रा = परमाणु ।
ख़ुरशेद = सूर्य ।

नं० ३ सपहरे-बरीं = आसमान ।

नं० ३ फ़िज़ा = शोभा ।
अनादिल = बुलबुलें ।
शबे-माहताब = चाँदनी रात ।
नसीम = हवा ।
ज़द = दुःख, चोट ।
अनाद = विरोध ।
बहरोबर = जल-थल ।

नं० ४ तहय्युर = आश्चर्य्य ।
अद्ल = इंसाफ़ ।
फ़िगार = फटा हुआ ।
गौहर = मोती ।
क़ालिबे-बेरूह = जीवविहीन शरीर ।
सरे-मू = बाल बराबर ।

नं० ५ बज़्म = सभा ।
वाइज़ = उपदेशक ।
अहले-फ़ज़्ल = आचार्य्य ।
इद्दआ = युक्ति-विहीन स्थापना।
तर्के औला = दैनिक धार्म्मिक कृत्यों का त्याग ।
तक़द्दुस = पवित्रता ।

नं० ५ रोज़े-जज़ा = प्रलय-का दिन ।
कलीद = ताली । कुंजी ।

मुसद्दस

नं० १ मग़रूर = गर्वी ।
किब्रो पि-दार = बड़प्पन का अभिमान ।
मौसमे-गुल = वसन्त ।
शाइस्ता = सभ्य ।
पेशओ हिर्फ़ा = उद्योग-धंधा ।
नजारी = बढ़ई का काम ।
हद्दादी = लुहार का काम ।
मुतमइन = निश्चिन्त ।
इनां = लगाम ।
शबां = भेड़िया ।
मुर्गे-खुश-इल-हां = मीठे बोल बोलने वाला पक्षी— तोता, मैना ।
बेनीलमराम = विफल मनोरथ ।

नं० २ अदबार = विपत्ति, दारिद्र्य ।
फ़लाकत = ग़रीबी ।
नहूसत = नेस्ती ।
पसोपेश = आगे पीछे ।
तुरबत = क़ब्र ।
गर्दूं = आस्मान ।
मोहतरिम = प्रतिष्ठित ।
ख़ैरुल् उमम् = शुभ-चिन्तक ।
नजाबत = सज्जनता ।
नंग = शर्म ।
नख़वत = अभिमान
मुदारा = ख़ातिर ।
वाम = क़र्ज़ ।

नं० ३ गदा गरी = भिख-मंगापन ।
रदा = चादर ।

नं० ३ नौहा = शोक-कविता ।
नदीम = सहचारी ।
फ़रऊन = मिश्र देश का एक नास्तिक राजा ।
अदीब = नीतिज्ञ, साहित्यिक ।
इंशा = लेखनकला ।
फ़सीह = सुवक्ता, सुलेखक ।
ख़ुतबा = धर्माचार्य या राजा का उपदेश, व्यवस्था ।
मसअला = सिद्धान्त ।
अहले-दोज़ख़ = नारकी
असा = लाठी ।
सितूँ = स्तम्भ ।
बैतुल अमासिल = सह-योगियों में ।